जैन भारती

दिसम्बर 2014 • वर्ष 62 • अंक 12 • वार्षिक ₹ 200

कोबा (गांधीनगर) पि. ३८२००९

अहिंसा यात्रा-उद्देश्य

- सद्भावना
- नैतिकता
- नशा-मुक्ति

अहिंसा सव्वभूयखेमंकरी

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथाय नमः

B.N. GROUP

स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी

बिमल-सुशीला, संदीप-मीता

सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा

सरदारशहर-गुवाहाटी

KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN
A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)

जैन भारती

वर्ष 62 • दिसंबर 2014 अंक 12

संपादक
डॉ. शान्ता जैन

आवरण
गौरीशंकर

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	वीतरागता का सूर्य उगाओ	आचार्य महाश्रमण	7
3.	जीवन का गूढ़ रहस्य जानें	गुरुदेव तुलसी	10
4.	शुभ भविष्य की रेखाएं	आचार्य महाप्रज्ञ	13
5.	घोष : जो अमर हो गए	साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	17
6.	वह क्षण नवोदय का क्षण था	आचार्य महाप्रज्ञ	21
7.	सामाजिक जीवन के विशेष प्रसंगों में नियति के चिंतन की उपयोगिता	सन्त अमिताभ	25
8.	फिर बड़ी चुनौती सामाजिक समरसता और अस्मिता की	पदमचन्द पटावरी	27
9.	आचार्य महाश्रमण की ऐतिहासिक अहिंसा-यात्रा		31
10.	अहिंसा उवाच	मुनि मोहजीत कुमार	34
11.	चित्त-शुद्धि के साधन	श्री चन्द्रप्रभ	37
12.	श्रावक कैसा? जिनदत्त जैसा	समणी विपुलप्रज्ञा	41
13.	सातों सुखों की खोज	आरती जैन, खुशबू जैन	46
14.	WATCH	चम्पालाल बोथरा	50
15.	विदेश की धरती पर जैन धर्म-दर्शन	समणी रोहितप्रज्ञा	52
16.	मंगल उद्‌बोधन आचार्य महाश्रमण का		55

संपादकीय संपर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए
* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

प्रेरणा पाथेय

- अध्यात्म के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए
सबसे पहला पड़ाव है—सम्यग्दर्शन।
जब तक दृष्टिकोण सही नहीं होता,
अध्यात्म की यात्रा आगे नहीं बढ़ सकती।

- अध्यात्म का प्रयोग करने वाले व्यक्ति की
वृत्तियां शांत होती हैं, ऊर्जा विकसित होती है
और कार्यक्षमता बढ़ती है, यह एक अनुभूत सत्य है।

- समस्या का स्थायी समाधान न हिंसा में है,
न भौतिक-समृद्धि में है और न शस्त्र-संपन्नता में।
वह निहित है—अध्यात्म में।

- जब तक मूर्च्छा का चक्रव्यूह नहीं टूटता,
तब तक हजार उपदेश सुनने और पढ़ने से भी
अध्यात्म का सही अर्थ-बोध नहीं होता।

- अध्यात्म में न संप्रदाय होता है, न वेश होता है,
न रूप होता है और न ही कोई मान्यता होती है।
वह वेशातीत, रूपातीत और मान्यतातीत होता है।

- लोकतांत्रिक व्यवस्था में जैसे मुख्य सिद्धांत है—
जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता का शासन।
वैसे ही अध्यात्म-व्यवस्था में होता है—
स्वयं के लिए, स्वयं के द्वारा, स्वयं का अनुशासन।

—आचार्य तुलसी

पर्यावरण के प्रति जागें

पर्यावरण आज का अहम प्रश्न है। इसके संतुलन और संरक्षण के संदर्भ में पूरा विश्व चिंतित है। कहा नहीं जा सकता कि राष्ट्रीय शिखर वार्ता में सोची गई योजनाएं, नीतियां और निर्णय दस्तावेजों पर हस्ताक्षर होने के बाद भी कब, कैसे सफल निष्पत्तियों तक पहुंचेंगे। पर इतना जरूर है कि उससे पहले आदमी स्वयं के गिरेबान में झांककर एक बार अवश्य देख ले कि कहीं उसका भीतरी पर्यावरण तो इस समस्या के लिए जिम्मेदार नहीं है?

कितनी विचित्र बात है कि एक आदमी ही ऐसा प्राणी है जिसने सब-कुछ पाकर भी खुद को खो दिया। औरों की समस्याओं का समाधान ढूंढ़ते-ढूंढ़ते स्वयं उस भीड़ में अपनी अस्मिता और अस्तित्व खो बैठा।

अणुव्रत पत्रिका के मुखपृष्ठ पर पृथ्वी का सुंदर चित्र देखा। वहां पशु-पक्षी और प्रकृति का सौंदर्य बिखरा पड़ा है मगर आदमी कहीं नजर नहीं आया। सोचने लगी– आदमी कहां खो गया? शायद जिस आदमी की तलाश थी वह अभी तक मिला न हो। इस सच को भी तो झुठलाया नहीं जा सकता कि आज आदमी आदमी रहा कहां है?

यद्यपि हम, आप और सभी आदमी की संज्ञा से पहचाने जाते हैं मगर दर्पण में अपना चेहरा देखें और एक बार स्वयं से पूछें तो सही कि 'क्या मैं आदमी हूं?'

आप ही बताइए–कहां खो गया वह आदमी, जो स्वयं को कटवाकर भी वृक्षों को कटने से रोकता था, गोचरभूमि का एक टुकड़ा भी किसी को हथियाने नहीं देता था, जिसके लिए जल की एक बूंद भी जीवन जितनी कीमती थी, कत्लखानों में कटती गायों की निरीह आहें जिसे बेचैन कर देती थीं, जो वन्य पशु-पक्षियों को खदेड़कर अपनी बस्तियां बनाने का बौना स्वार्थ नहीं पालता था?

अहिंसा जिसकी संस्कृति थी। सहअस्तित्व जिसका आदर्श था। मैत्री और करुणा जिसकी परंपरा थी। शोषण, अन्याय और अनीति के रास्तों पर न चलना जिसका चरित्र था। जो अधिकारों और कर्तव्यों की सीमा जानता था। अफसोस है कि ऐसा आदमी दुनिया की भीड़ में न जाने कहां खो गया।

आदमी खो गया परिग्रह की मूर्च्छा में, अनावश्यक हिंसा में, अर्थहीन आकांक्षाओं की संपूर्ति में, सत्ता और संपदा की सीमाओं को विस्तार देने में। इसीलिए इसमें अहं और क्रूरता पनपी। सुविधावादी मनोवृत्ति जागी। औरों के अधिकारों का शोषण शुरू हुआ। मानवीय संबंधों में कटुता आने लगी और नैतिकता के मानक गिरने लगे।

आज आदमी की आम सोच बन गई कि अच्छाइयों के रास्ते चलकर कहीं किसी मुकाम तक नहीं पहुंचा जा सकता, क्योंकि बाजार में बुराइयों का सौदा गर्म है। आदमी इस सचाई को भूल गया कि सौ बुराइयों के बीच दौलत के साथ इज्जत सुरक्षित नहीं रह सकती जबकि एक अच्छाई दौलत खोकर भी इज्जत को बचा लेती है। जीत हमेशा सच की होती रही है, भले ही उसे कंटीले रास्ते पार कर मंजिल तक पहुंचना पड़ा हो।

जब आदमी के भाव, विचार और कर्म बदलते हैं तो उसका प्रभाव बाहरी पर्यावरण पर भी पड़ता है। दूषित पर्यावरण दूषित विचारों का प्रतिफलन है। इसीलिए जरूरी है प्रकृति-संतुलन और सुरक्षा के लिए व्यक्ति स्वयं के चरित्र को बदले अन्यथा प्रकृति उसके कायदे-कानून तोड़ने वालों को कभी माफ नहीं करती।

अपने प्रति आदमी की असावधानी, उपेक्षा, संवेदनहीनता और स्वार्थी चेतना को देखकर प्रकृति ने उसके द्वारा किए गए शोषण के विरुद्ध विद्रोह किया है। आज पृथ्वी विनाशकारी हासिए पर खड़ी है। सचमुच! जागना जरूरी है।

जागकर फिर एक बार अपने भीतर उस खोए हुए आदमी को ढूंढ़ना है जो सच में खोया नहीं है, अपने लक्ष्य से सिर्फ भटक गया है।

आदमी बदले अपनी सोच, अपने कर्म, अपने उद्देश्य ताकि सबको सही समय पर सही दिशा मिले, क्योंकि बिना महत्त्वाकांक्षी मन को संयमित किए संस्कारों का पर्यावरण दूषित होने से बच नहीं सकता। हर समाधान के लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं। इसलिए हम कोई-न-कोई समाधान अवश्य खोज लायेंगे।

—मुमुक्षु शान्ता

वीतरागता का सूर्य उगाओ

हमारी साधना मुख्य रूप से यह होनी चाहिए कि हमारा मोह प्रतनु बने। हमारा कषाय उपशांत या क्षीण हो। मोह को प्रतनु करने की साधना ही हमारे जीवन की और अनंतकाल की यात्रा की बहुत बड़ी उपलब्धि है। अगर हमने मोह को कमजोर करने की साधना कर ली तो मानना चाहिए हमने बहुत बड़ा काम कर लिया। हमारी मोह-मुक्तता की साधना ही हमारे लिए कल्याणकारी और श्रेयस्कर हो सकेगी।

आचार्य महाश्रमण

जैन वाङ्मय का एक छोटा-सा सूक्त है–मंदा मोहेण पाहुडा अर्थात् जो मंद होते हैं, उनकी चेतना मोह से आवृत होती है अथवा जिनकी चेतना मोह से आवृत होती है, वे मंद लोग होते हैं। सूर्य तेजस्वी है, प्रकाशपुंज है, परंतु बादल उसके आगे आ जाए तो सूर्य का प्रकाश या सूर्य की तेजस्विता भी मंद हो जाती है, उसमें अंतर आ जाता है। हमारी चेतना भी एक प्रकार का सूर्य है, प्रकाशपुंज है। राग-द्वेष आदि मोह के अंग हैं। जब मोह चेतना को विकृत बना देता है, तब वह मंद हो जाती है। चेतना में एक प्रकार का अंधकार छा जाता है। मोह है तब तक ज्ञान का सूर्य प्रकट नहीं हो सकता। पहले मोह का बादल दूर होता है, तब केवलज्ञान का आदित्य प्रकट हो सकता है यानी अंधकार एक प्रकार का मोह है। जहां केवलज्ञान या वीतरागता का सूर्य है, वहां मोह का अंधकार ठहर नहीं सकता। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण के समक्ष अर्जुन कृतज्ञता के स्वर में बोल रहा है–

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।18/73।।

हे अच्युत (कृष्ण)! तेरी कृपा से मेरा मोह (भ्रम) नष्ट हो गया है और स्मृति फिर लौट आई है। अब मेरे संदेह समाप्त हो गए हैं और मैं स्थिर हो गया हूं। अतः मैं तुम्हारे कहे अनुसार काम करूंगा।

हे प्रभो! मैं आपके सामने उपस्थित हूं। मेरा आपके साथ लम्बा संवाद हुआ, ज्ञान की चर्चा हुई। उसका प्रभाव यह हुआ कि मेरा मोह नष्ट हो गया है। जो स्मृति चली गयी थी, वह मानो वापस लौट आयी है। मैं जागरूक बन गया हूं। यह सब आपके अनुग्रह से हुआ है। अब मैं संदेहमुक्त हो गया हूं, संशयरहित हो गया हूं और मेरा संकल्प है कि आपकी जो आज्ञा होगी, उसके अनुसार चलूंगा। यह मोह आदमी के विचारों को विकृत बना देता है और आदमी के आचरण को भी दूषित कर देता है। आदमी राग-द्वेषपूर्ण हिंसा तभी करता है, जब उस पर मोह का प्रभाव होता है। वह गलत काम या बेईमानी भी तभी करता है, जब मोह का उस पर प्रभाव होता है। वह आलसी भी तभी बनता है, जब उस पर मोह का प्रभाव होता है।

संस्कृत साहित्य में कहा गया–

उद्योगे नास्ति दारिद्रयं, जपतो नास्ति पातकम्।
मौनिनः कलहो नास्ति, नास्ति जागरिते भयम्।।

जहां पुरुषार्थ है वहां दरिद्रता दूर हो जाती है। जो जप करता है, भगवान का स्मरण करता है, उसका पाप दूर हो जाता है। मौनी आदमी के कलह नहीं होता यानी झगड़े के समय वाणी का संयम कर लिया जाए तो फिर झगड़ा नहीं होता। जहां जागरूकता है, वहां भय नहीं रहता, कोई खतरा नहीं होता।

आदमी मोह के प्रभाव को कम करने का प्रयास करे। मोह का प्रभाव रहता है तो संगठन में बिखराव भी पैदा हो सकता है। मोह है, राग-द्वेष है, आपस में सौहार्द नहीं, प्रेम नहीं तो संगठन भी धीरे-धीरे टूटने की स्थिति में आ जाता है। आचार्य भिक्षु ने अन्तिम समय में साधु-साध्वियों को जो शिक्षा दी, उससें यह शिक्षा विशेष रूप से थी कि सब आपस में प्रेम रखना। कई बार भाइयों में आपस में प्रेम नहीं होता तो परिवार में भी टूटन की स्थिति आ जाती है।

प्रेम संगठन की मजबूती का एक बड़ा आधार बनता है। मोह का प्रभाव होता है तो संगठन को भी कमजोर होने का मौका मिल जाता है। यह मोह आदमी को काम करने नहीं देता अथवा होने नहीं देता, क्योंकि आलस्य सताता है। समय पर काम नहीं किया जाता है, बहुत विलम्ब हो जाता है तो फिर काल उसके रस को पी जाता है। इसलिए जो काम जिस समय करने का होता है, उस समय अगर आदमी काम करता है तो उसका अच्छा लाभ मिल सकता है। यह मोह आदमी को गहराई में जाने से भी रोकता है।

आदमी तत्त्व की गहराई में इसलिए नहीं जा सकता, क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म का उदय रहता है और साथ में मोह का योग रहता है। जिसका मोह मंद हो जाए वह व्यक्ति गहरी खोज में जा सकता है, तत्त्व के अनुसंधान में जा सकता है। जिण खोजा तिंण पाईया, गहरे पानी पैठ अर्थात् जो गहरे में जाता है उसे कुछ मिलता है।

आदमी के जीवन में मोह का प्रभाव रहता है। केवल ममताभाव ही नहीं, अनेक भाव पैदा होते हैं। कर्मवाद के अनुसार विचार करें तो मोहनीय कर्म के दो प्रकार हैं–दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय। दर्शनमोहनीय आदमी के सम्यक् दर्शन को बाधित करनेवाला होता है और चारित्र-मोहनीय आदमी के चारित्र को विकृत बनानेवाला होता है। सम्यक्त्व उसे प्राप्त होता है, जिसके अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क और दर्शन-मोहनीय का क्षयोपशम, उपशम या क्षय होता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गई, परन्तु अप्रत्याख्यान चतुष्क का उदय है तो सम्यक्त्व आ जाने पर भी श्रावकत्व नहीं आता। प्रत्याख्यान चतुष्क का उदय है तो साधुपन नहीं आता। संज्वलन चतुष्क का उदय है तो वीतरागता प्राप्त नहीं होती है। ये मोह के कुछ स्तर हैं।

मोह कुछ कम हो जाता है तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, कुछ और कम हो जाता है तो साधुत्व की प्राप्ति हो जाती है और बिल्कुल उपशान्त हो जाता है तो उपशान्त मोह वीतरागता और संपूर्ण समाप्त हो जाता है तो क्षीण मोह वीतरागता प्राप्त हो जाती है। हमें ऐसा अभ्यास करना है, जिससे मोह को कम करते-करते हमारा पूरा मोह नष्ट हो जाए।

हालांकि मैं इस बात को जानता हूं कि इस जन्म में तो हमारे लिए मोहनीय कर्म को सर्वथा क्षीण करना संभव नहीं लगता, पर मोहकर्म को काफी कमजोर किया जा सकता है, पतला किया जा सकता है और हमारी जन्म-मरण की शृंखला को भी कम किया जा सकता है। चाहे पूर्ण वीतरागता न भी मिले, परंतु आदमी को मोह कम करने का प्रयास चालू रखना चाहिए।

यह पहाड़ है, इसको जितना तोड़ सकें, गिरा सकें, उतना अच्छा है। मोह रूपी पहाड़ को गिराने के लिए वैराग्य रूपी वज्र की अपेक्षा होती है। वैराग्य रूपी वज्र पास में है तो मोह को भी गिराया जा सकता है। पहाड़ कितना ही बड़ा क्यों न हो, वज्र उसको चूर-चूर कर देता है।

गीता में एक लंबे संवाद के बाद अर्जुन ने आत्मतोष की अनुभूति की। हमारे जीवन में आत्मतोष एक बड़ी चीज होती है। बड़ों के पास कोई बातचीत करे और आत्मतोष न मिले तो समझना चाहिए कहीं कोई न कोई कमी है। या तो बताने वालों में कुछ ज्ञान की कमी है या समझने वालों में कमी है।

कृष्ण जैसे व्यक्तित्व से अर्जुन को बात करने का मौका मिला। बात भी थोड़ी देर के लिए नहीं, लंबा संवाद करने का मौका मिला और संवाद के लगभग अन्त में अर्जुन ने कहा-प्रभो! अब मेरे मोह का आवरण दूर हो गया है और मुझे स्मरण भी हो गया है। मुझे आपका योग मिला, तब मेरा मोह नष्ट हुआ। अब मेरे मन में कोई संदेह नहीं रहा। मैं गतसंदेह हो गया हूं। अब आपकी जो आज्ञा होगी, वैसा मैं करने के लिए तैयार हूं।

मेरा सोचना है कि अर्जुन का मोह तो एक अंश में नष्ट हुआ होगा, परंतु मोह का पूर्ण विलय करना बहुत उत्तम बात होती है। जैन वाङ्मय में मोहनीय कर्म के पूर्ण विलय की बात आती है।

उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया कि आदमी के भीतर राग-द्वेष का भाव है। वही उसके दुःख का कारण बनता है। कोई पदार्थ दुःख का कारण नहीं बनता। पदार्थ आदमी को विकृत नहीं बनाता और पदार्थ आदमी में समता भी पैदा नहीं करता। मोह का भाव ही आदमी में विकृति पैदा करता है।

हमारी साधना मुख्य रूप से यही होनी चाहिए कि हमारा मोह प्रतनु बने। हमारा कषाय उपशांत या क्षीण हो। मोह को प्रतनु करने की साधना ही हमारे जीवन की और अनंतकाल की यात्रा की बहुत बड़ी उपलब्धि है। अगर हमने मोह को कमजोर करने की साधना कर ली तो मानना चाहिए कि हमने बहुत बड़ा काम कर लिया। हमारी मोह-मुक्तता की साधना ही हमारे लिए कल्याणकारी और श्रेयस्कर हो सकेगी। ❑

अच्छा-बुरा

डेनियल डेफो के मशहूर उपन्यास 'रोबिंसन क्रूसो' में प्रसंग है—नायक एक बार एक रेतीले द्वीप पर फंस गया। उसे वहां जिंदा रहने के लिए रास्ता ढूंढ़ना था। जब वह द्वीप पर था, उसने दो सूचियां बनाई। एक अच्छे अनुभवों की, दूसरी बुरे अनुभवों की। वह अपने साथ घटित हो रही बातों को अच्छी या बुरी सूची में लिखता जाता।

उसने लिखा–'मैं इस सुनसान द्वीप पर फंसा हुआ हूं, जो कि बुरा है, पर मैं जीवित हूं, जो कि अच्छा है। जहाज पर जितने अन्य व्यक्ति थे, वे मर गए पर मैं बच निकला।' आगे उसने लिखा, 'मैं बिल्कुल अकेला हूं, जो बुरा है। पर मैं भूखा नहीं मर रहा हूं, जो कि अच्छा है।'

उसने अपनी अवस्था के बारे में आगे लिखा, 'मेरे पास कोई कपड़ा नहीं है, जो कि बुरा है। पर साथ ही, यहां इतनी गर्मी कि मुझे कपड़ों की जरूरत नहीं है, इसलिए यह अच्छा है।' उसने फिर लिखा, 'जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए मेरे पास कोई हथियार नहीं है, जो कि बुरा है। पर समुद्र के किनारे कोई जंगली जानवर नहीं है, जो कि बहुत अच्छा है।'

अंत में, उसने लिखा, 'मेरे पास बात करने के लिए कोई भी नहीं है, जो कि बुरा है। पर जहाज समुद्र के किनारे के पास पड़ा है और अपनी बुनियादी जरूरतों का सामान मैं जहाज में से ला सकता हूं, जो अच्छा है।'आखिरकार रोबिन्सन क्रूसो ने यह जाना कि कोई परिस्थिति इतनी खराब नहीं होती कि इंसान प्रभु को धन्यवाद देने का कोई कारण ही न हो। इसलिए जब भी हमारे ऊपर संकट आए, हमें सकारात्मक बातों द्वारा ऊर्जा बनाए रखनी चाहिए।

–संत राजिन्दर सिंह

जीवन का गूढ़ रहस्य जानें

गुरुदेव तुलसी

मानव की आत्मा में अमित प्रकाश है। उसमें अन्वेषण और पथ-दर्शन की शक्ति है। ज्ञान-विज्ञान का अक्षय कोष मानव बुद्धि का सुफल है। मानव की वाणी और विचारों ने साहित्य, दर्शन और विज्ञान को जन्म दिया। इसीलिए मानव शक्ति और अभिव्यक्ति का केंद्र माना गया है। भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों का स्रष्टा मानव है। बाह्य दृष्टि वाले व्यक्तियों ने चेतन सत्ता को भुला कर जड़ शक्ति में विश्वास किया और आत्मा का अस्तित्व मानने वाले बाहरी शक्तियों का अनुभव करते हुए भी अन्तरंग अन्वेषण से विमुख न हुए। जीवन क्या है? हम क्या हैं? संसार क्या है? ऐसे प्रश्न उठे और समाहित हुए। समाधान में दोनों वादों ने भाग लिया।

भौतिकवादी वर्ग जड़-शक्ति का प्राधान्य मानकर सब-कुछ सुलझाने की चेष्टाएं कर रहा है। आत्मवादियों की दृष्टि आत्मा पर टिकी है और वे उस चेतन अरूपी सत्ता के सहारे जटिल गुत्थियां सुलझाते हैं। भौतिकवाद की जड़ में वर्तमान जीवन का ही मूल्य आंका जाता है, इसलिए वहां मुड़कर या आगे बढ़कर दृष्टि दौड़ाने की आवश्यकता नहीं रहती। अध्यात्मवाद की भित्ति आत्मा है। आत्मा के साथ जन्मांतर कर्म, स्वर्ग, नरक और मोक्ष की कड़ियां जुड़ी हुई हैं। अतीत के जीवन भुलाये नहीं जा सकते और भविष्य-जीवन की ओर से आंखें बंद नहीं की जा सकतीं। आध्यात्मिक क्षेत्र में धर्म-कर्म कल्पना की सृष्टि नहीं, वे तात्त्विक तथ्य हैं।

आज के युग का प्रमुख दृष्टिकोण जड़वादी है। उसमें त्याग और संयम की प्रमुखता नहीं है। त्याग का प्रयोग किया जाता है, पर संयम के लिए नहीं, भोग की वृद्धि के लिए। भोग-सामग्री की कमी हो, जीवन के उपयोगी साधन सबको सुलभ न हों, उसी दशा में दूसरों के लिए अपनी सुख-सुविधाओं का त्याग करना उनका लक्ष्य है। आध्यात्मिक त्याग का उद्देश्य आत्म-संयम है। विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख-साधनों से फलाफूला हो, ऐश्वर्य से दब रहा हो, धन-वैभव से लद रहा हो तो भी आध्यात्मिक व्यक्ति अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए भोगमय सुख-साधनों को ठुकराता हुआ आत्म-संयम के पथ पर अग्रसर होता है। भौतिकवाद में समानता की भावना है, फिर भी उसमें अहिंसा के लिए कोई स्थान

नहीं। समानता भी भौतिकता तक सीमित है। आत्मवादी भौतिक समानता के उपरांत भी हिंसा के दोष से बचना चाहता है।

आज का युग विज्ञान के इंगित पर चल रहा है। वर्तमान विज्ञान भौतिकवादी दृष्टिकोण के सहारे पनपा है, इसलिए वह जड़ तत्त्वों की छानबीन में लगा हुआ है। आत्म-अन्वेषण से उदासीन है। यदि यह बात न होती तो आज इतना संघर्ष न हुआ होता। भौतिकता स्वार्थमूलक है। स्वार्थ-साधना में संघर्ष हुए बिना नहीं रहते। आध्यात्मिकता का लक्ष्य परमार्थ है, इसलिए वहां संघर्षों का अन्त होता है। यह सच है कि संसारी प्राणी पौद्गलिक वस्तुओं से पूर्णतया संबंध विच्छेद नहीं कर सकते, फिर भी उन पर नियंत्रण करना आवश्यक है। धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व नियंता नहीं हो सकता।

धर्म विशाल-हृदय है। अहिंसा उसकी आत्मा है। हिंसा मृत्यु है, मोह बंधन है, वैर है। जो दूसरे की हिंसा करता है, वह अपना वैर बढ़ाता है। विज्ञान ने बड़े-बड़े घातक और डरावने अस्त्र उत्पन्न किये हैं। उनसे भय बढ़ा, आतंक बढ़ा और आशंकाएं बढ़ीं। एक समाज दूसरे समाज को, एक जाति दूसरी जाति को और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को संदिग्ध दृष्टि से निहार रहा है। हिंसा ने संसार का सारा खाका ही बदल डाला। सिंह भय के मारे भागा जा रहा है कि कहीं काले माथे वाला मुझे मार न डाले। मनुष्य इस भय से भागा जा रहा है कि कहीं बाघ मुझे खा न जाये। आज के संसार की भी यही मनोदशा है। इस स्थिति में कौन अभय दे सकता है? आशंका की लपट में झुलसते मानव को उबार सकता है? इस ओर जनता ध्यान दे, सोचे और समझे।

संतोष धर्म का जीवन है। इच्छा आकाश के समान अनंत है। उसे सीमित करो। संग्रह भावना मत रखो। अधिक संग्रह से जीवन अधिक दु:खी होगा। परिग्रह के साथ माया, कपट, अभिमान, दंड और दुर्भावनाएं बढ़ती हैं। सारे लोक में परिग्रह के समान दूसरी निविड़ जंजीर और कोई नहीं। अर्थलोलपुता आज चरम सीमा पर पहुंची हुई है। दुनिया के बड़े-बड़े मस्तिष्क अर्थोपार्जन की व्यायाम-विधि में संलग्न हैं। एक दूसरे को हड़पना चाहता है, निगलना चाहता है। भूमि उतनी कृपण नहीं बनी है, जितनी मानव की जठराग्नि तेज बनी है। वह अनंत धनराशि को पचा सकती है। सामग्री अल्प है। भोक्ता अधिक हैं। संचय की भावना उनसे भी अधिक है। इसलिए तो वर्ग-युद्ध छिड़ रहा है। नये-नये वाद जन्म ले रहे हैं। स्पर्धा और संघर्ष की चिनगारियां उछल रही हैं। आश्चर्य है, दुनिया इस ओर ध्यान नहीं देती कि धन केवल जीवन-निर्वाह का साधन है, साध्य नहीं। साध्य तो कुछ और ही है। सब प्राणी सुख चाहते हैं। वह उनका साध्य है। सुख आत्मा का धर्म है, शरीर का नहीं। वह संतोष से पैदा होता है, धन से नहीं। इसलिए शुष्क बुद्धिवाद में जीवन की बहुमूल्य घड़ियां यों ही मत खोओ।

लोग कहते हैं कि यह तर्कवादी युग है। मुझे लगता है कि यह युग अनुकरण-प्रेमी है। यहां गड्डरी-प्रवाह है। अनुकरण और तर्क की जोड़ी नहीं बनती। भेड़ एक पशु है। उनकी अनुकरण क्रिया क्षम्य हो सकती है। एक भेड़ के पीछे अनेक भेड़ें बोलें, यह नहीं अखरता। बुद्धिशील मानव बिना सोचे-समझे किसी की हां में हां मिलाने लगे तो यह अखरने जैसी बात है। कुछ भौतिकवादियों ने धर्म को अफीम कहा तो बहुत सारे लोग इस प्रवाह में बह चले। धर्म अफीम क्यों है? धर्म अनावश्यक क्यों है? यह भी कभी सोचा? धर्म में अफीम जैसी क्या वस्तु मिली? धर्म से न तो खून की नदियां बहीं और न लड़ाइयां ही हुईं। धर्म ने न तो धन के कोष जमा किये और न गगनचुम्बी अट्टालिकाएं खड़ी कीं। यह सब स्वार्थ की काली-करतूतें हैं। उन्होंने धर्म को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाया और उसके नाम पर बड़े-बड़े अन्याय एवं अत्याचार किये। उनके स्वार्थ सधे, धर्म बदनाम हुआ। लोगों की उस पर से आस्था हटी।

धर्म हिंसा और परिग्रह का सबसे बड़ा विरोधी है। उससे हमें शांति, सद्भावना और विश्व-मैत्री का संदेश मिला है। धर्म-वाक्यों ने परिग्रह की जितनी भर्त्सना की है, उतनी किसी भी वाद ने नहीं की। सभी वाद धन के लोलुप हैं। 'धन तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता, धन दुःख का हेतु है, अनर्थ का मूल है'—ये वाक्य धार्मिक क्षेत्र के सिवाय और कहीं भी नहीं मिल सकते।

आज धर्म का स्वरूप जानना जरूरी है। धर्म की परिभाषा दी गई—**आत्म-शुद्धि-साधनं धर्मः**—आत्म-शुद्धि के साधन—अहिंसा, संयम और तप—ये धर्म हैं। व्यवहार में धर्म अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच रूपों में अवतरित होता है। क्षमा, सहिष्णुता, नम्रता आदि गुण इसके परिवार हैं। धर्म व्यक्तिनिष्ठ है। धर्म का चरम लक्ष्य मोक्ष है। इसका अर्थ यह नहीं कि वर्तमान जीवन में उसका कुछ फल ही नहीं होता। धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपना जीवन-स्तर ऊंचा उठा सकता है। मैं उस जीवन-स्तर को ऊंचा मानता हूं, जो अधिक से अधिक त्यागपूर्ण और संतोषमय हो। जिनकी जीवन-आवश्यकताएं बढ़ी-चढ़ी हैं, जिन्हें भोग-साधन अधिक उपलब्ध हैं, मैं उनका जीवन-स्तर ऊंचा नहीं मानता, क्योंकि वस्तुतः वे सुखी नहीं हैं। अधिक आवश्यकताओं में सुख कम होता है और कम आवश्यकताओं में सुख की मात्रा बढ़ती है। अधिक आवश्यकता वाले व्यक्ति समाज या राष्ट्र के शोषक हुए बिना नहीं रह सकते।

जो आत्म-शुद्धि का साधन है, वह धर्म है। धर्म का स्वरूप है—त्याग और तपस्या। धर्म व्यक्ति से पृथक नहीं है। धर्म का आश्रय वह व्यक्ति है, जो अहिंसक और संतुष्ट है। धर्म से आचरण पवित्र होते हैं। धर्म प्रेम या स्नेह से ऊपर की वस्तु है। वह समता से ओत-प्रोत है। धर्म का लक्ष्य भौतिक सुख-प्राप्ति नहीं, आत्म-विकास है। धर्म प्रत्येक भौतिक कर्तव्य को सीमित करता है। धर्म परलोक के लिए नहीं, जीवन के प्रत्येक क्षण को सुधारने के लिए है। धर्म धनिक एवं उच्च-वर्ग वालों के लिए ही नहीं अपितु सबके लिए है। धर्म सबके लिए एक है। मैंने जिस धर्म का उल्लेख किया है, वह स्थायी है, उपकारी है, जन-जन के लिए आदरणीय है।

वर्तमान राजनैतिक वातावरण अति विषाक्त है। उसका विषैला असर सब क्षेत्रों को छू रहा है। धर्म भी उससे वंचित नहीं है। स्वार्थ की भूमिकाओं में पले-पुसे राजनैतिक-वाद धर्म का नाश करने को तुले हुए हैं। भौतिक सुख-समृद्धि के लिए आत्मा का अस्तित्व मिटाने का दृढ़ संकल्प किए हुए हैं। नास्तिकता के काले बादल अतीत की अपेक्षा आज घने और गहरे हैं। इस दशा में यदि धार्मिकों ने धर्म की मौलिकता पर ध्यान न दिया तो उन्हें भयंकर विपत्तियां झेलनी पड़ेंगी। जनता में धर्म की आस्था है। धर्म बहुत प्रिय है, पर रोटी का प्रश्न सुलझाने की ओट में जो नास्तिकता का प्रचार किया जा रहा है, धर्म पर गूढ़ प्रहार किया जा रहा है, वह उपेक्षा की वस्तु नहीं है।

मैं उन राजनीतिज्ञों को भी एक चेतावनी देता हूं कि वे इस भ्रम को तोड़ें कि हिंसात्मक क्रांति ही सब समस्याओं का समुचित समाधान है। अन्यथा स्वयं उन्हें कटु परिणाम भोगना होगा। स्थायी शांति सघन अहिंसा, समता और हृदय परिवर्तन में है। हिंसक क्रांतियों से उच्छृंखलता का प्रसार होता है। आज के हिंसक से कल का हिंसक अधिक क्रूर होगा, अधिक सुख-लोलुप होगा। फिर कैसे शांति रह सकेगी—इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्थितिचक्र परिवर्तन-शील है। अहिंसा-हीन कोई भी वाद सुखद नहीं हो सकता, यह निश्चित है। वर्ग-संघर्ष जैसी विकट समस्या अहिंसा और संतोष का समन्वय किये बिना स्थायी रूप से सुलझ नहीं सकती, यह भी निश्चित है। हिंसावादी हिंसा छोड़ें और परिग्रहवादी अर्थ-लोभ छोड़ें, तभी स्थिति सामान्य हो सकती है। प्राणीमात्र को अब अहिंसा और परिग्रह की मर्यादा समझनी है। हिंसा और परिग्रह का अभिनय करते-करते आज का मानव थक चुका है। अब उसे विश्रांति की आवश्यकता है—शांति की इच्छा है। मानव सुख का अर्थी है तो वह आत्मा को पहचाने।

शुभ भविष्य की रेखाएं

आचार्य महाप्रज्ञ

हमारा जगत परिवर्तनशील है। सब-कुछ बदलता है, अवस्थाएं बदलती हैं, मानसिकताएं बदलती हैं। यदि कोई मनुष्य यह मानकर चले कि मैं जैसा हूं वैसा ही रहूंगा तो इससे बड़ा कोई असत्य नहीं है, इससे बड़ी कोई भ्रांति नहीं है। आज हूं वैसा ही रहूंगा, इस पर किसी का अधिकार नहीं। जब 60-70 का होगा तो ठहर-ठहर कर उतरेगा, हाथ में लाठी भी चाहिए। वह स्वयं निर्णय कर ले कि वैसा नहीं रहूंगा। जब 30-40 वर्ष का था व्यापार करता था, अधिकार था। जब सत्तर वर्ष का हो गया, व्यापार लड़के करने लग गये, व्यापार उनके हाथ में आ गया। वह कैसे सोच सकता है कि मैं चालीस वर्ष का हूं, व्यापार मेरे अधिकार में है? सत्तर-अस्सी वर्ष में भी मेरे अधिकार में ही रहेगा, यह सोच नहीं सकता। परिवर्तनशील जगत की परिवर्तित होती हुई व्यवस्थाओं, परिस्थितियों और शारीरिक-मानसिक संरचनाओं के मध्य कोई व्यक्ति यह सोच ले कि यह कितना सत्य है, कितना असत्य। कितना यथार्थ है और कितना भ्रांत।

मेरा मानना है कि भविष्य दर्शन हर व्यक्ति को करना चाहिए। प्रतिदिन का करें कि कल क्या होगा? यह बहुत कठिन बात है, पर अगले वर्ष में क्या होगा? यह तो होना चाहिए और यह भी कोई न करे तो साठ वर्ष बाद क्या होगा? सत्तर वर्ष बाद क्या होगा? अस्सी वर्ष बाद क्या होगा? यह अवश्य करना चाहिए, क्योंकि उस अवस्था में स्वयं की शक्तियां भी कम हो जाती हैं, अपेक्षा भी बढ़ जाती है। सापेक्षता बहुत बढ़ती है, दूसरों पर निर्भर रहने की बात भी बनती है। एक प्रकार से जाने-अनजाने परावलंबन की स्थिति भी आती है। उस समय कैसा, क्या हो? शायद यह तो नहीं सोच सकते कि उस समय मेरी शरीर की शक्ति ऐसी ही रहे जैसी चालीस वर्ष में है। कोई विशेष प्रयोग करें तो हो भी सकता है, पर सामान्य बात हम नहीं मान सकते। शारीरिक स्थिति में अंतर आएगा किंतु मानसिक-भावात्मक स्थिति और अधिक अच्छी रहनी चाहिए। यह हमारे भविष्य दर्शन का एक विषय है।

हम पहले शारीरिक स्वास्थ्य को लें। इस बात पर ध्यान दें कि ऐसा आहार न हो, जो जल्दी बुढ़ापा लाए, शक्ति को कमजोर कर दे। आहार दोनों प्रकार का होता है। एक आहार वह है जो बुढ़ापे की गति को धीमा करता है, जल्दी नहीं आने देता। एक प्रकार का वह आहार है जो बुढ़ापे को बुलाता है। यह निर्णय करना चाहिए कि मेरा आहार कौन-सा है। बुढ़ापे की गति कम करने वाला है या बुढ़ापे को बुलाने वाला है?

मैं उपवास की अपेक्षा ऊनोदरी को ज्यादा महत्त्व देता हूं। उपवास का महत्त्व है पर मेरी दृष्टि में अनेक कारणों से ऊनोदरी का ज्यादा महत्त्व है। उपवास एक दिन किया और छुट्टी हो गई। ऊनोदरी बारह महीना हो सकती है। उपवास किया और पारणा में इतना ज्यादा खा लिया कि उपवास पीछे रह जाता है। ऊनोदरी बारह मासिक है, उपवास बारह मासिक नहीं हो सकता। चाहे कोई एकाशन करे, चाहे उपवास करे। सबको ध्यान देना है। एकाशन करे और उसमें भी इतना खाए कि दो-तीन बार की कसर एक बार में पूरी हो जाए! यह एकाशन नहीं, बीमार होने का तरीका है।

ऊनोदरी इतना अच्छा तरीका है कि स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, मन भी प्रसन्न रहता है और साथ में संयम भी सधता है। उपवास में संयम नहीं सधता। खाने के लिए बैठे और न खाए, वहां संयम की कसौटी होती है। यह बहुत कठिन काम है इसीलिए बहुत लोग कहते हैं कि आहार का संयम नहीं, हमें उपवास करा दो। अपनी कमजोरी प्रकट कर देते हैं।

ऊनोदरी अस्सी वर्ष तक भी शक्तियों को क्षीण नहीं होने देती। जो बहुत ज्यादा खाएगा वह अस्सी तो दूर की बात है, साठ में भी कमजोर बन जाएगा। पहला संयम, नियंत्रण यह है कि ऊनोदरी का अभ्यास रहे तो फिर अस्सी वर्ष का भी मैं हो जाऊंगा तो कोई चिंता की बात नहीं है, मेरी शक्तियां काम करती रहेंगी। उस अवस्था के लिए प्रारंभ से ही एक अच्छा संकल्प करें कि ऊनोदरी का अभ्यास करना है।

आयुर्वेद में आहार के विवेक की बात है। जितनी भूख है उससे आधा खाओ, पचास प्रतिशत खाओ। यह ऊनोदरी का बहुत सुंदर प्रयोग है। एक वैज्ञानिक कारण भी है। खाने के बाद वायु बन सकती है। पेट भरकर पूरा खा लिया तो वायु को अवकाश नहीं रहता, तब पेट फट रहा है, आंतें फट रही हैं, अफारा आ रहा है–ये सारी बातें सामने आती हैं। पचीस प्रतिशत पानी के लिए, पचीस प्रतिशत हवा बनती है उसके लिए और पचास प्रतिशत भोजन–यह एक संतुलन है। ऐसा सामंजस्य है तो बहुत सारी बीमारियां दूर रहेंगी।

शुभ भविष्य का दूसरा सूत्र है–श्रमनिष्ठा। जिस व्यक्ति में श्रमनिष्ठा है वह स्वस्थ रहेगा। जो व्यक्ति आलसी है, श्रम नहीं करता वह शरीर के प्रति उदासीन है, स्वास्थ्य के प्रति उदासीन है। श्रम किये बिना शरीर का कोई भी अवयव स्वस्थ नहीं रह सकता। सबको प्राणतत्त्व की जरूरत है, ऑक्सीजन की जरूरत है, अच्छी रक्तसंचार प्रणाली की जरूरत है। श्रम के बिना ये सारी बातें नहीं हो सकतीं। हृदय को श्रम बहुत प्रिय है। जो श्रम करता है उसका हृदय अच्छा रहता है।

श्रमनिष्ठ व्यक्ति के लिए प्रतिदिन कम से कम चार-पांच किलोमीटर घूमना जरूरी है। अगर कोई प्रातः भ्रमण नहीं करता, बिना घूमे प्रातराश करता है तो शायद शरीर के साथ न्याय नहीं करता। शरीर स्वयं कहेगा- तुम भूल कर रहे हो। प्रातः भ्रमण किया नहीं और प्रातराश यानी नाश्ता कर रहे हो, यह भूल हो रही है। दूसरा विकल्प है कि कोई इतना घूम न सके या अवकाश न मिले तो उसकी पूर्ति आसन, प्राणायाम से करे। आधा घण्टा आसन-प्राणायाम में लगाए तो श्रम की पूर्ति हो जाती है और सब अवयवों को अपना पोषण मिल जाता है। जिस बच्चे को पोषण नहीं मिलता वह शिष्य भी पनपता नहीं है। हम कह सकते हैं कि जिस अवयव को श्रम का पोषण नहीं मिलता वह अवयव भी पनपता नहीं है। सबको पोषण की जरूरत है। पोषण मिलता है श्रम के द्वारा। आलस्य के द्वारा कभी नहीं मिलता। हम भविष्य का

दर्शन करें तो पहला है ऊनोदरी का अभ्यास और दूसरा है दिन में चार-पांच किलोमीटर तक घूमने का अभ्यास। जो नहीं कर सके उनके लिए आधा-पौन घंटा आसन-प्राणायाम का अभ्यास। जो समर्थ हैं, जिनके पास समय है उन्हें ये दोनों ही करने चाहिए।

शुभ भविष्य का तीसरा सूत्र है–सहयोग और करुणा का भाव। दूसरों के प्रति हमारे मन में करुणा का भाव है, सहानुभूति का भाव है, सहयोग का भाव है तो उसके प्रति प्रियता बढ़ती चली जाएगी। जिसके मन में न करुणा, न सहानुभूति का भाव, न दूसरे की सेवा, सहयोग करने का भाव, उसके प्रति आकर्षण पैदा नहीं होता। बहुत आवश्यक है सेवा, सहयोग, सहानुभूति। उससे शायद कुछ ऐसे परमाणु इकट्ठे होते हैं आभामंडल में, जो आकर्षण पैदा करते हैं।

जो लोग केवल स्वार्थ की बात सोचते हैं कि किसी से लेना-देना नहीं है अपना ही काम करना है, कुछ हद तक वे ठीक रह सकते हैं, किंतु अवस्था के साथ और कुछ परिवर्तनों के बाद काफी सोचना पड़ता है कि यह क्या हो गया? इसका कारण है कि उन्होंने पहले ध्यान नहीं दिया। यदि व्यवहार पर समुचित ध्यान देते तो यह स्थिति नहीं बनती।

व्यवहार कौशल जरूरी है। उसके साथ जरूरी है अध्यात्म का अनुचिंतन। समुदाय में रहते हुए व्यवहार जगत में जीते हुए भी हम इस सचाई को कभी न भूलें कि मैं अकेला हूं। मेरी आत्मा अकेली है। कोई साथ देने वाला नहीं है। जिस व्यक्ति में अध्यात्म की भावना है वह व्यक्ति कभी दु:खी नहीं बनता। चित्त समाधि किसी दूसरे के हाथ में नहीं होती, स्वयं के हाथ में होती है।

जहां व्यवहार का प्रश्न है सहयोग लो और दो, सापेक्षता का जीवन जीओ। जहां व्यवहार निभाना है वहां निरपेक्ष मत बनो किंतु जहां सचाई का प्रश्न है वहां अनुभव करते रहो कि आखिर मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है। ये दोनों सचाइयां हैं। व्यावहारिक जीवन जीने के लिए व्यवहार की सचाई और आत्मशुद्धि या चित्तशुद्धि के लिए भीतर की सचाई।

हम शुभ भविष्य की कल्पना करें कि मेरे सामने शुभ भविष्य है। साथ में धर्मसंघ के सदस्यों का, जो धर्मसंघ के लिए अपनी सेवाएं लगा रहे हैं उनका शुभ भविष्य है। शुभ भविष्य के लिए हमारे संकल्पों का विकास हो। आहार-विवेक, श्रमनिष्ठा और करुणा का भाव शुभ भविष्य के संकल्प को प्राणवान बना सकता है। ❑

तुम भाग्य को कोसने में जितना समय लगाते हो, उतना यदि भाग्य के निर्माण में लगाओ तो तुम मंदिर के देवता हो जाओगे और भाग्य तुम्हारा पुजारी।

खिड़कियां खोलो। सूर्य की रश्मियां तुम्हारे लिए प्रकाश का उपहार लिए खड़ी हैं। तुम्हारे भाग्य की लिपि में अंधकार का लेख नहीं है। खिड़कियों को बंद कर तुमने ही उसे पाला-पोसा है।

हर आदमी विष या अमृत खाने में जितना स्वतंत्र है, उतना उनके परिमाम भुगतने में स्वतंत्र नहीं है।

तुम्हारा वर्तमान समर्थ और पवित्र होगा तो अतीत और भविष्य कभी अंधकारमय नहीं होगा।

तुम भाग्य की ओर मत झांको, तुम झांको उस पुरुषार्थ की ओर, जो तुम्हारे भाग्य की रचना करता है।

सत्य-जीवन का सत्य

सत्य जीवन का सबसे बड़ा आभूषण है। सत्यार्थी सत्य पाने के लिए सब-कुछ छोड़ने को तैयार रहता है। सत्य की प्रतिष्ठा संसार में कीर्ति, यश और वैभव से भी अधिक है। जो सत्य की लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन करते हैं, उनके जीवन में शांति रूपी सीता छली जाती है। अहंकार का रावण उसका हरण कर लेता है। सत्य को महात्मा गांधी ने परमात्मा की कोटि में रखा है। जो सत्य समाज के लिए 'शिव' (कल्याणकारी) होता है, वही सुन्दर है।

एक राजा ने प्रजा की भलाई के लिए नियम बना दिया कि नगर के बाजार में शाम तक यदि किसी वस्तु की बिक्री न हो तो वह राजकोष से क्रय कर ली जायेगी और उसका सही दाम दे दिया जायेगा। एक दिन एक मूर्तिकार शनि की मूर्ति बाजार में बेचने के लिए लाया। लेकिन किसी ने वह मूर्ति नहीं खरीदी। भला कौन उसे अपने घर स्थापित करना चाहेगा। शनि मूर्ति राजमहल में स्थापित कर दी गई।

उसी रात्रि राजा की नींद खुली तो देखा कि एक सुन्दर देवी राजमहल के दरवाजे से बाहर निकल रही है। राजा ने पूछा–देवी! आप कौन हैं? और कहां जा रही हो? देवी बोली–मैं लक्ष्मी हूं और आपके महल से जा रही हूं। राजा बोले–इस तरह क्यों जा रही हो?

उसने कहा–जहां शनि विराज जाए, वहां लक्ष्मी का निवास कैसे हो सकता है? राजा ने कहा–यदि ऐसा है तो जाओ। थोड़ी देर बाद एक कन्या नजर आयी, जो बाहर जाने को तैयार थी। राजा ने कन्या को रोकते हुए पूछा–तुम कौन हो और कहां जा रही हो?

उसने कहा–मैं कीर्ति हूं। कीर्ति का जोड़ा लक्ष्मी के साथ होता है। जहां लक्ष्मी है वहां कीर्ति है। लक्ष्मी चली गयी तो मेरा क्या काम? राजा ने कहा–यदि ऐसा है तो तुम भी जा सकती हो। इसके पीछे एक सुंदर पुरुष बाहर निकलते दिखा–राजा ने उससे भी वही प्रश्न किया। वह बोला मैं वैभव हूं जहां लक्ष्मी और कीर्ति नहीं वहां मेरा क्या काम? राजा ने उसे भी जाने दिया।

थोड़ी देर बाद एक वृद्ध संत राजमहल से बाहर जाते दिखा। राजा ने कहा–आप कौन हैं? वृद्ध पुरुष ने कहा–मैं सत्य हूं और अब आपके महल से जा रहा हूं।

राजा ने यह सुना तो अवाक् रह गया। बिस्तर से उठा और उस वृद्ध सन्त के पास जाकर बोला–यह आप क्या कह रहे हैं? आपकी प्रतिष्ठा के लिए मैंने लक्ष्मी, कीर्ति और वैभव को जाने दिया। यदि आप ही चले गये तो जीवन में क्या धर्म रह जायेगा? सत्य धर्म के पालनार्थ मैंने शनि खरीदने की स्वीकृति देकर अपने वचनों का पालन किया। आप तो मेरे आदर्श हैं, भला मैं आपको कैसे छोड़ सकता हूं? सब-कुछ चला जाए मेरा, सत्य कहीं न जाए फिर मुझे कोई चिंता नहीं। राजा उस वृद्ध पुरुष के चरणों में झुक गया।

राजा का यह समर्पण देखकर सत्य रुक गया और वापिस महल में लौट आया। जैसे ही सत्य लौटा कि पीछे से लक्ष्मी-कीर्ति और वैभव भी वापिस लौट आए। राजा ने उन तीनों को वापस आते देखकर कहा–देवी! यह क्या है? तीनों ने एक स्वर में कहा–जहां सत्य विराजमान है, वहां से हम नहीं जा सकते हैं।

सही है जहां सत्य है, वहां लक्ष्मी है, यश है, कीर्ति और वैभव है। जीवन की सारी संपूर्णताएं सत्य में निहित होती हैं। सत्य में ईश्वर की शक्ति का निवास होता है। यद्यपि शुरू में सत्य की राह चलना कंटकाकीर्ण है, संघर्षपूर्ण है, परंतु जीवन में सद्गुणों का वास सत्य धर्म के कारण ही होता है। ❑

घोष : जो अमर हो गए

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

आचार्य तुलसी धर्मक्रांति के पुरोधा थे। जन-मानस में जीवन की दिशा और दशा बदलने के लिए उन्होंने अनेक रचनात्मक आयाम खोले। समय-समय पर युगीन मूल्यों को जीने की प्रेरणा दी। भले उनके प्रवचन हो या फिर आलेख, संवाद हो या जन-संपर्क के पल, वे जीवन बदलाव के लिए कोई न कोई प्रेरणा सूत्र अवश्य देते जिनका प्रभाव स्थायी होता। उन्हीं प्रयोगों में एक प्रयोग है वे घोष, जिनमें जीवन मूल्यों को जीने का आह्वान है। जिसका हर बोल अनमोल है, हर चरण एक मंजिल है और हर क्रिया एक संदेश है। इसलिए पल-पल, पग-पग बहुत कुछ सीखा जा सकता है। आलेख में जिन घोषों की चर्चा की गई है, उन सबके पीछे एक विशेष उद्देश्य है, विशेष दर्शन है और विशेष मनोभाव है। इनके द्वारा लोकचेतना में बहुत कुछ संप्रेषित किया जा सकता है। अपेक्षा है एक-एक उद्घोष की पृष्ठभूमि को समझकर उस पर गहरी अनुप्रेक्षा की जाए। आचार्यश्री के व्यक्तित्व की अभिवंदना में यह एक रचनात्मक उपक्रम हो सकता है।

संयम : खलु जीवनम्

युगपुरुष वही होता है, जो युगीन समस्याओं को समझता है, उनका समाधान खोजता है और लोकजीवन को नई दिशा देता है। भगवान महावीर की परम्परा में अनेक युगपुरुष आचार्य हो चुके हैं। आचार्यश्री तुलसी उस परम्परा के प्रचेता आचार्य हैं। एक परम्परा और धर्मसंघ की सीमाओं में रहकर भी उन्होंने विश्वमानव को सामने रखकर अपने कार्यक्रमों का निर्धारण किया। लगभग चार दशक पहले उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। अणुव्रत के माध्यम से लोकजीवन को संयम के संस्कारों से संस्कारित करने के लिए उन्होंने एक घोष दिया—'संयमः खलु जीवनम्'—संयम ही जीवन है। दिल्ली में प्रथम अणुव्रत अधिवेशन के अवसर पर सन् 1950 का यह प्रसंग है।

समस्या चाहे परिग्रह की हो या हिंसा की, उसके मूल में काम करनेवाला तत्त्व है असंयम। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को विस्तार देकर मनुष्य की आकांक्षाएं उस पर हावी होने लगती हैं, यह असंयम की प्रेरणा का प्रतिफलित है। संग्रह, शोषण, युद्ध आदि जितनी भी समस्याएं हैं, वे असंयम की पौध पर ही फल-फूल सकती हैं। असंयम समस्या है और संयम उसका समाधान है, इस सिद्धांत को जन-जन तक पहुंचाने के लिए उन्होंने सामाजिक जीवन में संयम को प्रतिष्ठित करने का निर्देश दिया।

अमर रहेगा धर्म हमारा

धर्म की यात्रा आलोक की यात्रा है। धार्मिक होने का अर्थ है भीतर से आलोकित होना। जहां आलोक होता है, वहां आनन्द का स्रोत अपने आप बहता है। अन्धकार और दुःख के साथ धर्म का कोई वास्ता नहीं है। धर्म ऐसा तत्त्व है, जो अपने आश्रितों को त्राण देता है। पर कभी-कभी त्राण देने वाले को भी अत्राण बना दिया जाता है। धर्म के साथ कुछ ऐसा ही घटित हुआ।

मुसलमान कहने लगे–'इस्लाम धर्म खतरे में है।' इस नारे ने सब मुसलमानों को चौकन्ना कर दिया। हिन्दुओं ने कहा–'हिन्दू धर्म खतरे में है।' इस घोषणा ने हिन्दुओं को सतर्क किया। इस प्रकार सब धर्मों के अधिकारी अपने-अपने अनुयायियों को उकसा कर सांप्रदायिक उन्माद बढ़ाने में लगे थे। उस समय कुछ जैन युवक 'तरुण संघ' बनाकर व्यंग्य की भाषा में बोलते और लिखते–'धर्म (पंथ) खतरे में है।' वे धर्म के नाम पर तेरापंथ धर्मसंघ को खतरे में बता रहे थे। उनका चिंतन रहा होगा कि उनके विरोध से घबराकर पंथ छोड़ दिया जाएगा। किंतु आचार्यवर धर्म को पंथ और ग्रंथ की कैद से मुक्त कर उन्मुक्त नभ दे चुके थे। उनकी दृष्टि में धर्म को कभी खतरा हो भी नहीं सकता। इसलिए उन्होंने धर्म की अमरता का उद्घोष दिया। धर्म की ज्योति को आच्छादित करने के लिए जो राख एकत्रित की गई थी, वह इस घोष की आंधी से बिखर गई। यह घटना सन् 1948, छापर चातुर्मास की है। उस वातावरण में इस घोष ने इतना काम किया कि धर्म की शाश्वत सत्ता के आगे लगाया गया प्रश्नचिह्न समाप्त हो गया।

जो हमारा हो विरोध : हम उसे समझें विनोद

जो व्यक्ति लीक से हटकर चलता है, उसे समाज सहज रूप से सहन नहीं कर सकता। आचार्यश्री ने साधु जीवन की मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हुए सामाजिक स्तर पर काम करने का निर्णय लिया। यद्यपि उस काम का सीधा संबंध धर्म या नीति से ही था। फिर भी कुछ परंपरावादी लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में उसका विरोध करना शुरू कर दिया। विरोध का स्वर मंद हो या तीव्र, विरोध विरोध ही होता है। साधारण व्यक्ति विरोध की संभावना मात्र से पीछे हट जाता है। उन क्षणों में तो उसका मनोबल पूरी तरह टूट जाता है, जब उस प्रवृत्ति का सीधा लाभ उस व्यक्ति को प्राप्त न होकर समाज को मिलता है। दूसरों के लिए खपना और विरोध भी झेलना–इस दोहरी धार पर चलने का साहस किसी महापुरुष में ही हो सकता है।

आचार्यश्री के जीवन में संघर्षों एवं विरोधों का एक बहुत बड़ा भाग रहा है। कोई वर्ष मुश्किल से ही बीता होगा, जिसमें उनके विरोध में यत्र-तत्र कुछ नहीं हुआ हो। कभी धर्मसंघ की अंतरंग परिषद में विरोध के स्वर मुखर हुए, कभी श्रावक समाज में हलचल हुई। कभी जैन समाज द्वारा विरोध किया गया तो कभी सनातनी लोगों द्वारा बावेला उठाया गया। कभी कुछ प्रगतिशील कहे जाने वाले लोगों ने विरोध किया तो कभी कट्टर परंपरावादी लोगों के द्वारा उसे बल मिला। कुल मिलाकर विरोध की बदली तेजस्विता और यशस्विता को ढकने की दिशा में सक्रिय रही, पर यह भी एक यथार्थ है कि बादलों की छाया कभी स्थायी नहीं होती। बादलों की तरह फैलने वाला विरोध समय पाकर छंट जाता है और हजारों तारे चमकने लगते हैं।

विरोध के कारण आचार्यश्री कभी रुके नहीं। उनकी संकल्पशक्ति इतनी प्रबल रही कि हजार कठिनाइयों में भी वे कभी संकल्प-विकल्पों से आहत नहीं हुए। उन्होंने अनेक बार कहा–'जब तक संभव होता है, मैं विरोधों और संघर्षों से बचता रहता हूं। किंतु जब वे सामने आ जाते हैं, तब मुझे अज्ञात शक्ति मिलती है और मैं उन्हें पूरी शक्ति से प्रतिहत करने का प्रयत्न करता हूं।' आचार्यश्री के व्यक्तित्व में इस विशेषता को कभी भी देखा जा सकता है।

सन् 1949 में आचार्यश्री का चातुर्मास जयुपर था। वहां दीक्षा के प्रसंग में विरोध का वातावरण इतना तीव्र था कि बहुत लोग घबरा गए। उन नाजुक क्षणों में उन्होंने एक घोष दिया–'जो हमारा हो विरोध: हम उसे समझें विनोद।' इस घोष से संबंधित एक पूरा गीत बनाकर उन्होंने उसका संगान किया तो गीदड़ मनों में सोया हुआ सिंह जाग उठा। समाज के पुरुष तो क्या, महिलाओं ने सामूहिक रूप से राजस्थान की राजधानी में अहिंसक प्रतिरोध करने के लिए जुलूस निकाले। लोग देखते रह गए। बिना किसी दुर्घटना के शांत वातावरण में दीक्षा समारोह का आयोजन हो गया। तब से यह घोष निरंतर एक सफल पथ-दर्शक का काम कर रहा है।

विवेक ही धर्म है

धर्म जीवन का तत्त्व है। यह आत्मशुद्धि या पवित्रता का एकमात्र साधन है। किंतु इसे भी जब क्रियाकांडों के साथ जोड़ दिया जाता है और उन्हीं को प्रधानता प्राप्त हो जाती है, वहां धर्म का तेज धुंधला हो जाता है। इस कथन का अर्थ यह भी नहीं है कि धर्म में उपासना नाम का तत्त्व होना ही नहीं चाहिए। उपासना का भी एक सीमा तक मूल्य है, पर उसके साथ आचरण जीवंत रहे, यह आवश्यक है।

उपासना के दो रूप हैं–रूढ़ और प्रायोगिक। रूढ़ उपासना दिनचर्या का एक अंग अवश्य बनती है, किंतु वह जीवन को भीतर से प्रभावित नहीं कर सकती। प्रायोगिक उपासना करने से उपासना में प्राणों का संचार हो जाता है। इसी दृष्टि से आचार्यश्री ने श्रावक समाज के लिए उपासना को प्रायोगिक रूप देने का निर्देश दिया। उस निर्देश की क्रियान्विति हेतु उपासना शिविरों की आयोजना बहुत कारगर सिद्ध हुई। सन् 1963 में लाडनूं चातुर्मास में एक उपासक शिविर चल रहा था। शिविर काल में उपासक भाई-बहनों को विशेष प्रशिक्षण देते हुए एक दिन आचार्यवर ने कहा–विवेगे धम्ममाहिए–विवेक ही धर्म है। विवेक जागृत रहता है तो व्यक्ति किसी भी समय धर्म की आराधना कर सकता है। विवेक के अभाव में अहंकार और ममकार को पनपने का अवसर मिलता है। इसी भावना को स्पष्ट करते हुए हमारे आचार्यों ने लिखा है–

अहंकारो धियं ब्रूते नैनं सुप्तं प्रबोधय।
उदिते परमानन्दे नाहं न त्वं न वै जगत्।।

अहंकार बुद्धि से कहता है कि तू सोए हुए विवेक को जगाना मत। यदि यह जाग गया तो न मेरा अस्तित्व रहेगा, न तुम्हारा अस्तित्व रहेगा और न यह संसार चलेगा। इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अहंकार और ममकार का वलय तोड़ने के लिए विवेक का जागरण आवश्यक है। इस दृष्टि से आचार्यश्री ने विवेक चेतना को धर्म के रूप में परिभाषित किया। प्रबुद्ध लोगों ने इस घोष को बहुत पसंद किया।

पहले इंसान इंसान : फिर हिन्दू या मुसलमान

जिस देश के मनीषी संतों ने 'एकैव मानुषी जातिः' का सूत्र देकर पूरे विश्व के मनुष्यों को एकता के धागे में बांधने का प्रयत्न किया था, उसी देश में मनुष्य-मनुष्य के बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी होती गई। कारण कुछ भी रहा हो, जातिवाद, भाषावाद और संप्रदायवाद का भूत इस रूप में सवार हुआ कि लंबे संघर्ष के बाद देश का विभाजन हो गया। इस विभाजन में अहम भूमिका किसी की रही हो, पर पारस्परिक भ्रातृत्वभाव प्रगाढ़ रहता तो शायद ऐसी स्थिति नहीं आती। देश स्वतंत्र होने के बाद देशवासियों को भावात्मक एकता की सीख दी गई, पर वह भी गले नहीं उतरी। फलतः आदमी-आदमी का जानी दुश्मन बन रहा है। कभी हिन्दू-मुसलमान, कभी हिन्दू-सिख एवं कभी दूसरे नाम से दंगे होते हैं, और अखंड भारत को खंडों में बांटने का प्रयास होता है।

आचार्यश्री का स्पष्ट मंतव्य है कि हिन्दू कोई धर्म नहीं है। वह समाज है, संस्कृति है। हिन्दुस्तान में रहने वाले सभी लोग हिन्दू हैं, फिर चाहे वे सिख हों, ईसाई हों, मुसलमान हों या जैन हों। यह हिन्दू शब्द की विराट परिभाषा है। इसे समझाने की कोशिश की जाती तो शायद विवाद इतना नहीं बढ़ता। भारत की माटी में भावात्मक एकता को पोषण देने के लिए उन्होंने एक घोष दिया–**'पहले इंसान इंसान : फिर हिन्दू या मुसलमान।'**

इसमें हिन्दू एवं मुसलमान शब्द भी प्रतीकात्मक है। इसकी भावना यह है कि मनुष्य किसी भी जाति, धर्म या प्रांत से जुड़ा हुआ हो, पहले वह इंसान है। इंसानियत का तकाजा है कि ऊपर से ओढ़े हुए भेदभावों के लबादे को उतारकर मनुष्य सबसे पहले मनुष्य बने। दक्षिण भारत की ऐतिहासिक यात्रा में मद्रास चातुर्मास के बाद सन् 1969 में आचार्यश्री ने यह घोष तब दिया, जब ईसाइयों, कम्यूनिस्टों एवं मुसलमानों के केंद्र केरल की ओर उनके चरण गतिशील थे। उस यात्रा में ही नहीं, प्रायः सभी यात्राओं में इस घोष का अकल्पित प्रभाव रहा।

कैसे बदले जीवन धारा : प्रेक्षा ध्यान साधना द्वारा

व्यक्ति बदलना चाहता है, पर पुरुषार्थ एवं प्रयोग के बिना कोई बदल नहीं सकता। मेरी शरण में आ जाओ, उसकी शरण में चले जाओ, तुम्हारा जीवन बदल जाएगा, यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। जैनदर्शन के अनुसार कोई व्यक्ति तभी बदल सकता है, जब उसका पुरुषार्थ सही हो।

देश में चरमराते हुए नैतिक मूल्यों ने आचार्यश्री को अणुव्रत का प्रवर्तन करने की प्रेरणा दी। अणुव्रत की आचार-संहिता भी पूरी सूझबूझ के साथ तैयार की गई। उसके प्रचार-प्रसार से एक वातावरण बना और वैचारिक धरती सुदृढ़ हो गई। किंतु मनुष्य के संस्कारों एवं आदतों में बदलाव नहीं हुआ। संस्कार बदले बिना व्यक्ति अच्छी बात को भी आचरणगत नहीं बना सकता। इस स्थिति का आचार्यश्री ने अनुभव किया और अपने शिष्य मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) को विशेष शोध एवं प्रयोग करने का निर्देश दिया।

आचार्यवर के निर्देशानुसार उन्होंने जैन शास्त्रों में अवगाहन किया और वहां बिखरे हुए ध्यान के तत्त्वों को बटोर लिया। 'प्रेक्षा ध्यान' के नाम से उस प्राचीन ध्यान पद्धति का नवीनीकरण हुआ। सन् 1977 में जैन विश्वभारती के 'तुलसी अध्यात्म नीडम्' से आचार्यश्री ने घोष दिया–'कैसे बदले जीवन धारा: प्रेक्षा ध्यान साधना द्वारा।'

तब से अब तक प्रेक्षा ध्यान के अनेक शिविर आचार्यवर के सान्निध्य में आयोजित हो चुके हैं। इन शिविरों में अनेक वर्गों, अनेक विचारधाराओं और अनेक श्रेणियों के प्रायः सभी आयुमान के लोग सम्मिलित हुए। कुछ लोगों में असाधारण बदलाव आया, कुछ साधारण रूप से बदले और कुछ बदलने के रास्ते पर आ गए। प्रबुद्ध और वैज्ञानिक दृष्टि वाले व्यक्ति इन शिविरों से विशेष रूप से लाभान्वित हुए। शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को भी इस पद्धति से लाभ का अनुभव हुआ है।

निज पर शासन : फिर अनुशासन

अनुशासन का संबंध साधना और व्यवस्था, दोनों के साथ है। आत्मानुशासन के बिना साधना का विकास नहीं हो सकता और बाह्य अनुशासन के अभाव में व्यवस्थाओं का संचालन नहीं हो सकता। आत्मानुशासन सिद्ध होने पर बाह्य अनुशासन सहज सिद्ध हो जाता है। बाह्य अनुशासन आत्मानुशासन को जागृत या पुष्ट करने में निमित्त बन सकता है। अनुशासन करना सब चाहते हैं, अनुशासन में रहना कोई नहीं चाहता, यह वर्तमान युग की समस्या है। इसका प्रभाव राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक आदि सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। आचार्यश्री ने इस समस्या का तीव्रता से अनुभव किया। सन् 1981 में जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के ऐतिहासिक प्रसंग पर यह घोष दिया–'निज पर शासन : फिर अनुशासन।'

अनुशासन तभी प्रभावी हो सकता है, जब व्यक्ति पहले स्वयं अनुशासित रहे। यह आचार्यश्री के अनुभव की वाणी थी। इस घोष का जिन लोगों ने अपने जीवन में इसको प्रायोगिक रूप दिया, उनके सामने परिणाम भी अच्छा आया, पर उसके लिए भी धृति की अपेक्षा रहती है। आज बीज बोया जाए और आज ही फल मिल जाए, यह संभव नहीं है। धैर्य के साथ प्रतीक्षा की जाए तो निष्ठा के साथ किया जाने वाला हर प्रयोग सफल हो सकता है। कदाचित दूसरों पर उसका असर न हो तो भी प्रयोक्ता के अपने व्यक्तित्व का रूपांतरण निश्चित रूप से होता है, जो उसके जीवन की एक बड़ी उपलब्धि है।

नया सवेरा आए : सोया मन जग जाए

सन 1985, उदयपुर जिले का आमेट नामक कस्बा। वहां आचार्यश्री की धर्म शासना के पचासवें वर्ष-प्रवेश के उपलक्ष्य में समायोजित 'अमृत महोत्सव' के बहुमुखी कार्यक्रमों के बीच आचार्यवर ने एक गीत को स्वर दिया। जनता की चेतना झंकृत हो गई। उस गीत में एक प्रेरक उद्घोष था–'नया सवेरा आए, सोया मन जग जाए।' इस घोष में अन्तर् मन को कुरेदने वाली ऐसी प्रेरणा है, जो जागृत अवस्था में सोने वाले लोगों को झकझोर देती है। ❑

वह क्षण नवोदय का क्षण था

आचार्य महाप्रज्ञ

राज्याभिषेक के साथ ही ऋषभ पर एक महान उत्तरदायित्व आ गया। ऋषभ ने सोचा–जनता ने मुझे जिस आशा और अपेक्षा से राजा चुना है, उसे पूरा करना है। मुझ पर जो विश्वास किया है, उसे सार्थक प्रमाणित करना है। मेरे लिए यह कसौटी का समय है। केवल राजा बनने से क्या? कोरे नाम से तो काम चलता नहीं। नाम के अनुरूप काम करूं तो कोई सार्थकता है। केवल नाम से क्या होगा?

जैन साहित्य में निक्षेप के बिना कोई बात समझी नहीं जा सकती। चार निक्षेप आते हैं–नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। अब किसी का नाम रख दिया महावीर। नाम तो महावीर है, नाम से क्या हुआ? नाम से कुछ नहीं हुआ। न तो महावीर हनुमान बना, न भगवान महावीर बना। स्थापना और द्रव्य निक्षेप से भी काम नहीं होता। जब तक भाव निक्षेप नहीं होता, काम नहीं होता।

भगवान ऋषभ के पास अवधिज्ञान था। वे एकांत में बैठे। कोई भी चिंतन करना होता है तो एकांत में बैठना होता है। एकांत में मन की सारी गति ठीक हो जाती है। एकांतवास चिंतन के लिए बहुत उपयोगी होता है। जो व्यक्ति निरंतर कोलाहल में रहता है, उसके लिए बड़ी कठिनाई है। यदि गंभीर चिंतन करना है तो एकांत में जाना बहुत जरूरी है। उस समय आबादी बहुत कम थी, कोलाहल था नहीं। ऋषभ ने एकांत में बैठकर सोचा–अब नाभि ने मुझे राजा बना दिया। यौगलिकों ने मुझे राजा के रूप में स्वीकार कर लिया। आज तक राज्य शासन कभी हुआ नहीं। नया सूत्रपात मुझे करना है। क्या करना चाहिए? उन्होंने सोचा–राजा के शासन का पहला काम है भूखों को भोजन देना, भोजन की व्यवस्था करना। वह राजा, वह शासन अच्छा नहीं होता जिसके राज्य में लोग भूखे रहें।

हमारे जीवन की जितनी अपेक्षाएं हैं उनमें सबसे पहली अपेक्षा क्या है? उपाध्याय विनयविजयजी ने शांत सुधारस में इसका एक अच्छा संकलन किया है। जो अनिवार्यता की सूची है उस तालिका में सबसे ऊपर है रोटी। रोटी को लेकर ही न जाने कितना लिखा गया–'भूखे भजन न होइ गोपाला।' मुद्राराक्षस नाटक में लिखा गया–'भूखा आदमी चान्द को देखता है तो पूर्णिमा का चान्द रोटी जैसा प्रतीत होता है।' जब भूख सताती है तब क्या हालत होती है, यह अज्ञात नहीं है। यौगलिकों को

पूरा भोजन नहीं मिल रहा था। पहली समस्या रोटी की, फिर पानी, कपड़ा, मकान की। यह वर्गीकरण आज का नहीं है, चार सौ वर्ष पहले उपाध्याय विनयविजयजी द्वारा किया गया वर्गीकरण है।

ऋषभ ने सोचा–रोटी की समस्या है, भूख की समस्या है। इसका समाधान कैसे हो? चिंतन में लग गए। अगर शासक जनता की समस्या पर एकाग्र होता है तो समाधान खोज लेता है। आज की समस्या यह है कि शासक स्वयं चंचल हैं, एकाग्र नहीं हैं। किसी भी समस्या पर एकाग्र होना नहीं जानते, इसलिए समस्या का समाधान नहीं होता। कोई भी व्यक्ति समस्या का समाधान करना चाहे तो उसे एकाग्र होना पड़ेगा। समस्या पर एकाग्र हुए बिना कभी समाधान नहीं मिलेगा। एक समस्या जब तक हल न हो जाये, उस पर एकाग्र रहें, समाधान मिल जायेगा। एक निश्चित नियम है–जैसे हमारी एकाग्रता बढ़ेगी, हमें समाधान मिल जायेगा। ऋषभ अवधिज्ञानी थे। एक विषय पर एकाग्र हो गये, समाधान उपलब्ध हो गया।

यह अतिक्रमण की घटना तभी रुकेगी,
शासन सत्ता भूखों को भोजन देगी।
हो ध्यान-मग्न गहरे-गहरे में देखा,
सहसा कौंधी नभ में बिजली की लेखा।।
फल-पत्र-मूल आहार विकल्प बनेगा,
उत्पन्न सहज शश्यक भी उदर भरेगा।
यह मर्म अशन का कुछ युगलों ने पाया,
संदेश ऋषभ का दूर-दूर पहुंचाया।।

ऋषभ ने कुछ यौगलिकों को बुलाया, बुलाकर कहा–'अब तक हम लोग केवल वृक्ष पर निर्भर रहते थे। केवल कल्पवृक्ष से जो फल मिलता उसे खाते रहे हैं। अब मैं नया विकल्प सुझा रहा हूं। अब से हम पत्तों को भी खाना शुरू कर दें। पत्ते बड़े शक्तिशाली होते हैं। जड़ को भी खाओ। हमारे यहां जंगल में चावल भी पैदा होता है। अपने आप बिना बुआई किये जैसे घास उगता है वैसे कुछ अनाज होते हैं। चावल उगता है, गेहूं भी उगता है, जंगली अनाज होता है। केवल फलों से काम न चले तो इन चीजों का प्रयोग शुरू कर दें। इनसे हमारी भूख की समस्या का एक बार समाधान हो जायेगा। इसके बाद हम फिर नया समाधान खोज लेंगे।'

यह बात सबको जच गई। यौगलिकों ने खाकर प्रयोग कर लिया कि पत्ते भी खाये जा सकते हैं। पत्तों में तो कितना रस होता है, यह बहुत लोग नहीं जानते। अगर आज कोई अच्छा वनस्पति का वैज्ञानिक पत्तों को खाने की बात सिखा दे तो निकम्मा लगने वाला तत्त्व भी उपयोगी लगने लग जायेगा। ऐसे पत्ते भी हैं, ऐसी औषधियां भी हैं कि एक दिन खा लो तो सात दिन तक रसोई बनाने की जरूरत नहीं। पूरा पोषण मिलता रहेगा। फूल में भी बड़ी ताकत है।

ऋषभ ने विकल्प सुझा दिया–पत्ते खाओ, मूल खाओ, जंगल में जो अनाज है, उसको खाओ। यह संदेश सब यौगलिकों तक पहुंचाया। आप यह खायें, आपकी समस्या का समाधान हो जायेगा।

पानी की कोई समस्या नहीं थी। नदियां बहुत थीं। कपड़े की कोई समस्या नहीं थी। एक समस्या थी मकान की। उस समस्या को कैसे सुलझाया जाये? यह प्रश्न ऋषभ के मानस को उद्वेलित कर रहा था। ऋषभ ध्यान की मुद्रा में बैठे। कुछ क्षण बीते, इतने में एक विचित्र घटना घटित हुई। ऋषभ के सामने एक दिव्यात्मा आकर खड़ी हो गई।

ऋषभ ने आंख खोली, देखा–एक प्रकाशमय आत्मा सामने खड़ी है। यदि ऋषभ के स्थान पर दूसरा होता तो डर जाता। एक दिव्यात्मा को झेलना बड़ा कठिन होता है। ऋषभ के लिए यह कोई कठिन बात नहीं थी। वे तो स्वयं इतने शक्तिशाली थे कि डरना कभी सीखा ही नहीं था।

ऋषभ ने पूछा–'आप कौन हैं?'

दिव्यात्मा बोली–'दुनिया बहुत बड़ी है। इस लोक में असंख्य द्वीप हैं, असंख्य समुद्र हैं, आकाश में असंख्य नीहारिकाएं हैं।' आज के वैज्ञानिक भी, जो सूक्ष्म यंत्रों के द्वारा आकाश का अध्ययन करते हैं, कहते

हैं कि असंख्य नीहारिकाएं हैं। उनकी कोई संख्या नहीं की जा सकती। 100 प्रकाश वर्ष की दूरी के बाद दूसरी आकाश गंगा आती है। हमारी दुनिया छोटी नहीं है। इतना विशाल जगत है कि हमारी पृथ्वी का तो कहीं स्थान ही नहीं आता। स्वामी! ये द्वीप, ये समुद्र, ये नीहारिकाएं और ये आकाशगंगाएं असंख्य हैं। इस जगत में कोई अकेला नहीं है। आप यह न मानें कि मैं अकेला हूं।'

ऋषभ ने पूछा–'फिर भी तुम कौन हो?'

इन्द्र बोला–'स्वामी! मैं सौधर्म देवलोक का अधिपति हूं। स्वामिन्! चार प्रकार के देवता होते हैं– व्यन्तर, भवनपति, ज्योतिषी और वैमानिक। वैमानिक देवता सबसे ऊंचे हैं, उन वैमानिक देवों में पहला देवलोक है सौधर्म देवलोक। उस सौधर्म देवलोक का मैं इन्द्र हूं। मैं आपकी सेवा में आया हूं। मैंने अवधिज्ञान से देखा कि आपके मन में चिंता है। आप सोच रहे हैं कि यौगलिकों को आवास कैसे मिले? भवन कैसे मिले? छत के बिना कोई रह नहीं सकता। यह आपके मन में चिंता है। मैंने उस चिंता को भांप लिया। मैंने सोचा–ऋषभ चिंता में बैठे हैं। मुझे उनकी चिंता को समाप्त करना चाहिए। मैं तत्काल आपके चरणों में उपस्थित हो गया। मुझे आप आदेश दें कि मैं क्या करूं?'

सौधर्म लोक का अधिपति मैं हूं स्वामी!,
श्रीचरणों में आगत सेवा का कामी।
मानव की भूमी से संबंध पुराना,
रहता है पुनरपि पुनरपि आना-जाना।।
है प्रभु-ललाट पर अंकित चिंतन-रेखा,
चिंतन में चिंता को इठलाते देखा।
आवास समस्या को क्षण में सुलझाऊं,
नगरी की रचना कर कृतार्थ बन जाऊं।।
सहयोग परस्पर है प्राणी-प्राणी में,
उसकी प्रतिभा प्रस्फुट वाणी-वाणी में।
केवल इंगित की मानवप्रवर! प्रतीक्षा,
मानव-संस्कृति की होगी मंजुल दीक्षा।।

अगर इस प्रकार कोई दिव्यात्मा आ जाये और सेवा मांगे तो कैसा लगेगा? ऋषभ ने सोचा–यह बहुत बड़ा काम है। मैं मकान बनाना किसी को सिखाऊंगा तो कितना समय लग जायेगा। यौगलिक जानते नहीं थे। ऋषभ जानते थे कि मकान कैसे बनाया जा सकता है। उनके पास अतीन्द्रिय ज्ञान था। वे मकान बनाने की कला जानते थे, विधि जानते थे, पर आखिर बनाये कौन? बनाने वाले तो यौगलिक थे, वे नहीं जानते थे। वर्षों तक उनको शिक्षित करना पड़ता।

ऋषभ ने सोचा–यह ठीक विकल्प है। मैं इन्द्र को कह दूं कि तुम मकान बना दो। काम जल्दी हो जायेगा। जो काम आदमी दस वर्ष में कर सकता है, एक दिव्य शक्ति के द्वारा वह काम दस मिनट में हो सकता है। यह असंभव नहीं है। इतनी शक्ति है पदार्थ में और प्राणी में कि काम हो सकता है। जो खेती साठ दिन में पकती है, दो-तीन महीने में पकती है वह खेती एक दिन में पक जाती है। ऐसा होता था। आदमी भी कार्य में गति ला सकता है तो दिव्य शक्ति की तो बात ही क्या है।

ऋषभ ने आदेश दिया–'इन्द्र! तुम जाओ, मकानों का निर्माण करो, नगर बसाओ, घर बनाओ।'

इन्द्र ने कुबेर को बुलाया, आदेश दिया–'कुबेर! सबसे पहले ऋषभ के लिए विशाल नगरी का निर्माण करो, जिसमें ऋषभ, उनका परिवार और यौगलिक भी रह सकें।'

हम धन्य, प्राप्त निर्देश प्रणत मानस हैं,
नव कल्पन करने में सुर गण को रस है।
सुरपति ने धनपति को तत्काल बुलाया,
नगरी-रचना का मंत्र-मर्म समझाया।।
सुर शक्ति अमाप्य अगम्य कल्पनाचारी,
निर्माण कला-कौशल अनुपम अविकारी।
प्रासाद-सदन-गृहपंक्ति यथाविधि पथ है,
छत नीचे रहना युगल-जगत का अथ है।।

कुबेर और देवता जुट गये। न कोई मजदूर की जरूरत थी, न कोई सामान कहीं से लाने की जरूरत थी।

देवता की संकल्पशक्ति इतनी मजबूत होती है कि जो मन में सोचा, वह चीज सामने तैयार है। देखते-देखते एक ही दिन में अयोध्या नगरी का निर्माण कर दिया। अयोध्या का मूल नाम है विनीता। जिस अयोध्या में राम हुए हैं, उस अयोध्या नगरी का निर्माण ऋषभ के लिए इन्द्र ने करवा दिया। बारह योजन चौड़ी और नौ योजन लम्बी नगरी का निर्माण कर कुबेर इन्द्र के पास आया, बोला– 'आपका आदेश मैंने क्रियान्वित कर दिया है। नगरी बन गई है।' इन्द्र ने ऋषभ से निवेदन किया–'प्रभो! भवन तैयार हैं, प्रासाद तैयार हैं, नगरी तैयार है। अब आप कृपा करें और अयोध्या नगरी में प्रवेश करें।'

ऋषभ ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार की। इन्द्र द्वारा संकेतित पथ पर ऋषभ चले, साथ में यौगलिक भी चले। उनमें विचार और कल्पना भी नहीं थी कि मकान कैसा होता है? नगर के निकट आए। मंगल प्रवेश का क्षण आ गया। जहां ऋषभ है, वहां स्वतः मंगल है। नगरी के प्रवेश द्वार पर इन्द्र ने ऋषभ का स्वागत किया। इन्द्र ने कहा–'यह प्रवेश करने का द्वार है। आप इस द्वार से नगरी में प्रवेश करें।' उस समय प्रवेश और निर्गमन शब्द ही नहीं थे। जहां मार्ग है, वहां दरवाजे बने हुए हैं। दरवाजे को बंद भी किया जा सकता है और खोला भी जा सकता है। द्वार खोल दें, व्यक्ति भीतर प्रवेश कर सकेगा। द्वार बंद कर दें, बाहर से कोई भीतर नहीं आ सकेगा। नई कल्पना और नए विचार को यौगलिकों ने आश्चर्य के साथ देखा।

नगर-प्रवेश के पश्चात् आगे बढ़े। प्रासाद-पंक्ति को देख यौगलिक स्तब्ध रह गए। एक भव्य प्रासाद के आगे ऋषभ के चरण रुके। इन्द्र ने कहा–'इस भव्य प्रासाद में ऋषभ रहेंगे।' ऋषभ ने अपने लिए निर्मित प्रासाद में प्रवेश किया। इन्द्र ने अन्य यौगलिकों को अलग अलग घरों में रहने का अनुरोध किया। सब यौगलिक विस्मय के साथ इन्द्र द्वारा निर्दिष्ट घरों में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सिर पर कभी छत नहीं देखी थी। पैरों के नीचे आंगन नहीं देखा था। खुले आकाश को छोटे-छोटे कमरों में कैद होते नहीं देखा था। सब-कुछ अजीब-सा लग रहा था। नव गृह प्रवेश के उस क्षण में उन्मुक्त गगन में वृक्षों के नीचे रहने वाले एक निश्चित सीमा में बंध गए।

तरुवासी जग का संप्रवेश नगरी में,
मानो सागर का सन्निवेश गगरी में।
जाना युगलों ने जो आवृत वह घर है,
छत के नीचे भूमी, ऊपर अंबर है।।

इस स्थिति में आप अनुभव करें तो आपको कैसा लगेगा? आज आदमी का एक संस्कार बन गया है। उसे मकान बनाने की जरूरत नहीं होती। व्यक्ति घर में प्रवेश करता है, उसे कुछ नयापन अनुभव नहीं होता। घर में सोपान-पंक्ति बनी हुई है। आदमी ऊपर चढ़ता है, नीचे उतरता है। उसे सोचना नहीं पड़ता। वह त्वरा से सोपान चढ़ जाता है। उसके पैर भी संस्कारित हो गए हैं, इसलिए आदमी आंख मूंद कर सीढ़ियां चढ़ जाता है, उतर जाता है। जैसा हमारा मानसिक संस्कार होता है, वैसा स्नायविक संस्कार भी होता है। जो स्नायुओं का संस्कार होता है, वह कार्य अपने आप हो जाता है। जब व्यक्ति भोजन करने बैठता है, क्या वह सोचता है? सामने भोजन की थाली आई, अपने आप हाथ थाली में जाता है, फुलके का कोर टूटता है और वह मुंह में चला जाता है। भोजन का कार्य बहुत सहजता से संपन्न हो जाता है, इसलिए कि एक संस्कार बना हुआ है।

हमारा सारा जीवन संस्कार के आधार पर चलता है। यौगलिकों में मकान में रहने का संस्कार नहीं था, इसलिए प्रारंभ में उनको एक-एक बात समझानी पड़ती थी। मकान में प्रवेश करने और रहने की विधि भी बतलाई गई। वे घरों में रहने लगे। अनंत आकाश में रहने वाले सीमा में बंध गए।

ऋषभ ने राजा बनते ही दो समस्याओं का समाधान कर दिया–भूख की समस्या का समाधान और मकान की समस्या का समाधान। उस समाधान ने आदिम युग की गाथा में कुछ नए पृष्ठ जोड़ दिए। अकर्म युग से कर्म युग में प्रवेश की आधार-भूमि निर्मित हो गई। युग परिवर्तन का वह क्षण नवोदय का क्षण बन गया। ❑

सामाजिक जीवन के विशेष प्रसंगों में नियति के चिंतन की उपयोगिता

सन्त अमिताभ

नियति एक तथ्य है। इसका चिंतन, तथ्यपरक चिंतन है। सामाजिक जीवन में सामान्यत: व्यवहारपरक चिंतन उपयोगी होता है। विशेष प्रसंगों में तथ्यपरक चिंतन उपयोगी होता है। इच्छा हुई प्रयास किया, सफल बना—यह व्यवहारपरक चिंतन है। नियति ने इच्छा जगाई, नियति ने प्रयास करवाया, नियति ने सफल बनाया—यह तथ्यपरक चिंतन है।

कभी किसी कारण से अतिरिक्त हर्ष हुआ। कभी किसी कारण से अतिरिक्त विषाद हुआ। दोनों विशेष प्रसंग हैं। इनसे मन असंतुलित होता है, शरीर पर दुष्प्रभाव पड़ता है, ऐसे प्रसंगों में तथ्यपरक चिंतन उपयोगी होता है। तथ्यपरक चिंतन के अतिरिक्त हर्ष, अतिरिक्त विषाद का निरसन होता है, मानसिक संतुलन का प्रत्यागमन होता है।

सफलता मिली, अतिरिक्त हर्ष हुआ, मन असंतुलित बना। इस समय नियति की स्मृति, अतिशय हितकर होती है। नियति थी, सफलता मिली। इसका मौलिक हेतु मैं नहीं, नियति है। जब मौलिक हेतु मैं नहीं, तब सफलता का श्रेय मुझे नहीं, नियति को है। अतिरिक्त हर्ष संजोकर, असंतुलित बनाना उचित नहीं। इस तथ्य-परक चिंतन से अतिरिक्त हर्ष का तापमान उतरता है, मन संतुलित बनता है।

असफलता मिली, अतिरिक्त विषाद हुआ, मन असंतुलित बना। इस समय भी नियति का स्मरण, रामबाण औषध है। सफलता असफलता किसी के अधीन नहीं है। दोनों नियति की लीलाएं हैं। दोनों का श्रेय या अश्रेय नियति को है। असफलता कचोटती है, दु:खी बनाती है, यदि मैं उसे अपनी मानता हूं। असफलता का निकट संबंध मेरे से नहीं नियति से है। फिर व्यर्थ क्यों मानूं, मैं असफल बना? क्यों अतिरिक्त विषाद का शिकार बनूं? क्यों असंतुलित बनूं? खैर, छोड़ो, नियति थी वैसा हुआ। यह तथ्यपरक चिंतन है। इससे स्थिति बदलती है, अतिरिक्त विषाद और असंतुलित मन के पंख टूटते हैं।

अतिरिक्त हर्ष के अनेक निमित्त होते हैं—सम्मान, प्रेम, श्रेय, इच्छापूर्ति, लाभ आदि, अतिरिक्त विषाद के भी अनेक निमित्त होते है—अपमान, कटुता, अपयश, आरोप, इच्छापूर्ति न होना, अलाभ आदि। अतिरिक्त हर्ष और विषाद से संबद्ध सभी प्रसंगों में, नियति का चिंतन, एक अनन्य हितैषी मित्र का काम करता है।

चुनाव हुआ। एक प्रत्याशी विजयी बना, एक पराजयी। सामान्यत: विजयी का 'अहंभाव' फुफकारता है। पराजयी का 'अहंभाव' छटपटाता है। दोनों मानसिक रुग्णता से ग्रस्त है। नियति है तो नियति का स्फुरण इन्हें इस परिस्थति से उबार सकता है।

नियति से विजयी बना, अपनी क्षमता से नहीं, नियति न होती, तो पराजयी भी बन सकता था। नियति ने विजयी बनाया और बना। इसमें मेरी क्या विशेषता? दूसरा प्रत्याशी भी विजयी बन सकता था, किन्तु नियति नहीं थी, इसलिए नहीं बन सका—इस चिंतन से विजयी के अहंभाव का फुफकारना मिटता या कम पड़ता है और मानसिक स्वस्थता का प्रत्यागमन होता है।

किसी में स्वतंत्र कर्तव्य नहीं। अपने स्वतंत्र कर्तृत्व से न कोई विजयी बनता है, न कोई पराजित। नियति से व्यक्ति विजयी बनता है, नियति से पराजित। मैं और दूसरा प्रत्याशी, दोनों नियति के खिलौने हैं। नियति ने

जैसे चाहा वैसे खिलाया। इसमें क्या जय और क्या पराजय? अपने को पराजित मानकर अशांत बनना और दूसरे प्रत्याशी को प्रतिद्वंद्वी मानना व्यर्थ है। इस चिंतन से अहंभाव का छटपटाना रुकता है और मन स्वस्थ बनता है।

एक व्यक्ति बुद्धिमान है। बड़े व्यवसाय में हाथ डालता है, अथक प्रयास करता, किंतु सफल नहीं बनता है। छोटा व्यवसाय सुहाता नहीं। स्वाभिमान क्षत-विक्षत होता है, मस्तिष्क असंतुलित बनता है। नीरसता घेरती है। स्फुरित नहीं होता कि क्या किया जाए? नियति है तो नियति का गंभीर चिंतन उसे इस स्थिति से मुक्त कर सकता है।

नियति ने मेरे से बड़ा व्यवसाय करवाया, नियति ने असफल बनाया। मैंने अपने कर्तृत्व से न बड़ा व्यवसाय किया और न असफल बना। मेरी कहीं गलती नहीं। व्यर्थ क्यों असंतुलित बना? क्या स्वाभिमान क्षत-विक्षत हुआ? असफलता से मेरा कोई वास्ता नहीं। सब नियति के उपकरण हैं। नियति जिससे जो चाहे, काम ले। इसकी अधीनता से न मैं न कोई दूसरा मुक्त हो सकता है। यह चिंतन, मस्तिष्क को स्वस्थ और संतुलित बनाने में विशेष उपयोगी बन सकता है।

किसी ने धोखा दिया। प्रतिशोध का भाव बनता है, किंतु प्रतिशोध लेना संभव नहीं। मन तिलमिलाता है। नियति है तो नियति का चिंतन इस परिस्थिति को शांत करने में सहयोगी बनता है।

उसकी नियति थी, इसलिए उसने धोखा दिया। मेरी नियति थी इसलिए मैंने धोखा खाया। वह दोषी नहीं। ऐसा होना था इसलिए हुआ। होनहार से क्या तिलमिलाना? इस चिंतन से मन की ऊष्मा शांत होती है।

चिता चिता नहीं, चिंता चिता है। चिता शांति को नहीं, मुरदे को जलाती है। चिंता शांति को जलाती है। फिर भी इसे जीवन में बहुत स्थान मिलता है।

व्यक्ति भविष्य को समुज्ज्वल बनाने की चिंता में अत्यधिक व्यस्त रहता है। भविष्य को समुज्ज्वल बनाना संभव नहीं। सही अर्थ में भविष्य का कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं। भविष्य का वर्तमान के रूप में अस्तित्व बनता है। वर्तमान समुज्ज्वल बनाया जा सकता है। उस ओर ध्यान कम जाता है।

चिंता से कैसे बचा जाए ?

जरा जटिल प्रश्न है। नियति है तो नियति का चिंतन इस जटिल प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करता है। जो होने का है वह होगा। चिंता करें तो भी होगा। चिंता न करें तो भी होगा। चिंता से होना टलेगा नहीं। चिंता न करने से अनहोना होगा नहीं। चिंता की व्यर्थता सर्वज्ञात है। भविष्य को नियति पर छोड़ने वाला चिंतामुक्ति का रसास्वाद कर सकता है। वस्तुतः नियति निश्चितता की संदेशवाहक है। दैनिक व्यवहार के छोटे-छोटे प्रसंगों में व्यक्ति आविष्ट, क्रुद्ध और अशांत बनता है, दूसरों के आविष्ट, क्रुद्ध एवं अशांत बनने में भी निमित्त बनता है। पाचन संस्थान गड़बड़ा जाता है। आम्लपित्त (एसीडिटी) उभर आती है। उसे अपनी यह प्रकृति इष्ट नहीं, बदलना चाहता है फिर भी बदलने में अक्षम रहता है। नियति है तो नियति की समझ उसे राहत दे सकती है। जिनकी जैसी नियति है वैसा वह करता है। दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप करना, अपने को अशांत बनाना है। होने को टाला नहीं जा सकता। होने को होने दो। विरोध से बचो। चुप्पी हितकार है। चुप रहो और अपने को आविष्ट-क्रुद्ध होने से बचाओ। यह चिंतन प्रकृति के रूपान्तरण में सहयोगी बनता है। किसी के पति का स्वभाव बेमेल है। किसी की पत्नी का स्वभाव बेमेल है। किसी के पुत्र का स्वभाव बेमेल है। किसी के माता-पिता का स्वभाव बेमेल है। विवशता है। साथ रहना पड़ता है। आपसी झगड़ा, कटुता, जीवन की सरसता को किरकिरा बनाती है। नियति है तो नियति का चिंतन इस किरकिरेपन से व्यक्ति को उबार सकता है।

जिसकी जैसी नियति है वैसा उसका स्वभाव है, वैसा उसका व्यवहार है, वैसा उसका सोचने और बोलने का ढंग है। वह स्वयं चाहे तो भी उसे बदल नहीं सकता। इसलिए कोई दोषी नहीं। किसी के वंश में कुछ नहीं। जैसी स्थिति है उसी में सहमत बनना, उसमें प्रसन्न रहना शुभ है। इस चिंतन से सहनशीलता बढ़ती है, जीवन का किरकिरापन दूर होता है और संयोग है तो घरेलू वातावरण भी आमूल परिवर्तित होता है। ❑

फिर बड़ी चुनौती सामाजिक समरसता और अस्मिता की

पद्मचन्द पटावरी

जैन परंपरा में आचार्यश्री तुलसी युगांतरकारी जैनाचार्य हुए हैं। आपकी जन्म शताब्दी के समारोह का कार्यक्रम अभी-अभी संपन्न हुआ है। पूरे वर्षभर तक आपके अवदानों की खास चर्चाएं हुईं। उन्हें श्रद्धापूर्वक याद किया गया।

इन्हीं अवदानों की इन्द्रधनुषी श्रृंखला में आपका एक रूप है समाज सुधारक का। शुरू-शुरू में आश्चर्य तो हुआ ही होगा कि एक जैनाचार्य को समाज सुधार जैसी विसंगतियों पर प्रहार करने की नौबत क्यों आई? उनका मन था कि जो धर्माचार्य समाज की पीड़ा से दूर हो, उन्हें धर्म क्षेत्र का नेतृत्व करने का हक नहीं। उनके सामने समाज की तस्वीर स्पष्ट हो गई। समाज का ढांचा विसंगतियों के मकड़जाल से ग्रथित देख उद्वेलित हो गए। तेरापंथ समाज के एकमात्र सर्वमान्य धर्मगुरु थे, अतः आपने सबसे पहले अपने समाज को रूढ़ियों से मुक्त करने का बीड़ा उठाया।

वह वक्त था, जब पर्दाप्रथा चरम पर थी, नारी उत्पीड़न का अजीब-सा वातावरण था, नारी घर की चारदिवारी में कैद एवं मशीन से अधिक नहीं थी। मृत्यु के अवसर पर वृहद् भोज यानी विभोज के बाद नारी के साथ किया जाने वाला अमानवीय कलह एवं अनेक कुप्रथाएं समाज को दीमक की तरह चाटने लगी थीं। तब गुरुदेव तुलसी ने सिंहनाद किया। एकबारगी तो समाज चौंका जरूर, पर फिर अपने आराध्य के आह्वान पर एक के बाद एक पग उठते गये।

वह समय था सन् 1960 के आसपास का। आचार्य तुलसी पूर्वांचल भारत की यात्रा के पश्चात् मेवाड़ी वीर प्रसूता धरती पर पधार चुके थे। अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तन को भी एक दशक पूरा हो चुका था। आचार्य तुलसी की छवि राष्ट्रीय स्तर पर समाज सुधारक के रूप में बननी शुरू हो गई थी। सन् 1960 के राजसमंद चातुर्मास में अनेक पुरुष एवं महिलाएं कार्यकर्ता आगे आये। यों कहना चाहिए कि समाज में विकृतियों के महान संकट से उबरने की दिशाएं खुलने लगीं।

समाज में कोई भी प्रथा अवश्यमेव अपने शुरुआती दौर में समाज की अपेक्षा या मजबूरी से प्रारंभ होती है, पर कालांतर में उसके रूढ़ होने का भी खतरा बना रहता है। इनमें समय-समय पर परिष्कार की संभावनाएं बनी रहनी चाहिए। तब से लेकर अब तक यानी इन पांच से अधिक वर्षों में अनेक कुरीतियां जहां अपनी मौत मर गईं, बहुत सारी नई भी शुरू हुईं और उनमें से कई आज की नारी को बेदम, बेकार और सामाजिक़ समरसता को क्षतिग्रस्त करने वाली बन गईं। नित नई प्रथाएं जन्म ले रही हैं, उन पर सामज की दृष्टि जानी जरूरी है।

प्रारंभ में समाज के पास साधन स्वल्प थे। अधिकांशतः कृषि आधारित व्यवस्था जीवनयापन का माध्यम थी। जीवन सादा-सरल और सहज था। संयुक्त परिवार व्यवस्था मान्य थी। एक छत के नीचे परिवार के

अनेक लोग सुख-शांति से रहते थे। धीरे-धीरे व्यापारार्थ बाहर जाने का क्रम बना। कोई पहले और कोई बाद में, हमारा समाज देश के सभी हिस्सों में पहुंच गया। वहां अर्थार्जन के अवसर प्राप्त होते गये। चूंकि व्यावसायिक क्षमता और संस्कार हमारे खून में थे, अत: नये क्षेत्रों में पैर जमाने में कहीं कोई दिक्कत नहीं हुई। हमारा व्यवहार कुछ ऐसा रहा कि स्थानीय लोग हमें सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। हम भी उनके साथ हिलमिल कर उनकी भावना के साथ संगति बिठाकर कर वहीं रचपच गये।

आर्थिक संपन्नता के महा दौर में लक्ष्मी ने हमारा पूरा साथ दिया। अनेक परिवार इस दौड़ में अतिरिक्त आगे निकल गये। यों समाज का हर अंग एक जैसा हो, यह संभव नहीं होता, पर आर्थिक सम्पन्नता ने जहां हमारे लिए समृद्धि के द्वार खोले, वहां अर्थ की प्रचुरता में कई सामाजिक समस्याएं भी खड़ी होने लगीं। अर्थ के सदुपयोग की बजाय उसके दुरुपयोग के रास्ते भी खुलने लगे। विवाह आदि अवसरों पर अर्थ के अंधाधुंध दुरुपयोग का क्रम शुरू हो गया। व्यक्तिगत अहं एवं स्वयं को अव्वल सिद्ध करने के लिए यह सबकुछ होता रहा। संयुक्त परिवार व्यवस्था में भी सेंध लगने लगी। अर्थ आधारित इस सामाजिक सत्ता ने समाज की वर्जनाओं को गलत बताना शुरू कर दिया। परिणाम स्वरूप सामाजिक विषमताओं का नया दौर शुरू हो गया।

सामाजिक विषमता समाज और राष्ट्र के लिए अभिशाप होती है। वैसा ही हमारे साथ घटित होना शुरू हुआ। जहां हम व्यवसायरत थे और हैं वहां के स्थानीय लोगों में हमारे प्रति जो सम्मान था, वो विद्रोह और घृणा में परिणत होने लगा। आज देश के अनेक क्षेत्रों में इसे प्रत्यक्षता में देखा जा सकता है। इसका एकमात्र कारण अर्थ आधारित अंधाधुंध खर्च एवं आडंबर है। हमारे समाज का एक वर्ग, जो मध्यम या गरीब है, उसके मन में भी इन लोगों के प्रति अनास्था और असद्भाव के भाव स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। हमारे अपने भाई हीनभावना से ग्रसित हो रहे हैं। समाज का ढांचा चरमरा गया है।

शुरू में सामाजिक आयोजन विवाह आदि अधिकांशत: अपने गांव और समाज के बीच में करने की मानसिकता रहती थी। इससे सामाजिक जुड़ाव के साथ-साथ सामाजिक अंकुश कुछ न कुछ रूप में रहता था, पर अर्थ के मद में चूर हमारे अर्थसंपन्न अग्रिम पंक्ति के लोगों ने अपने पैतृक स्थानों को छोडकर अन्यत्र शहरों में विराट रूप में आयोजन करने शुरू कर दिये। पहले सभा भवन, धर्मशालाएं, अतिथिगृहों को टारगेट किया जाना था। नई संस्कृति में उसे भी नकारा जाने लगा है। अब तो खर्चीले होटल एवं रिसोर्ट्स को चुना जाने लगा है। जहां न तो खान-पान के प्रवेश की सीमाएं रही हैं, न ही टैन्ट, विद्युत की सीमा। सचित फलों का प्रयोग, सड़कों पर भौंडे नृत्य आदि पर कोई अंकुश नहीं दिखाई दे रहा है। गीत सम्मेलन के रूप में एक नई कुप्रथा ने तो हमारी सांस्कृतिक चूलें हिला देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। रिंग सेरेमनी और न जाने किती नई प्रथाएं ईजाद की जा रही हैं जिनकी आवश्यकता नहीं होंनी चाहिए। मुख्य बात अर्थ के आधार पर समाज में अपने आपको अव्वल ठहराने की कसरतें तेज होती जा रही हैं।

जब ऐसे आयोजनों पर समाज की अंगुली उठती है तब हमारे इन बड़े भाइयों को बुरा लगता है। वे अपने बचाव में तर्क देते हैं कि संघीय और सामाजिक संस्थाओं में जब हम पैसा देते हैं तब तो समाज की नजरों में हम ठीक होते हैं और जब अपने घर में खर्च करते हैं तो क्यों किसी को एतराज होता है? आखिर हम कमाई किसलिए कर रहे हैं?

उनके इस तर्क का विनम्र जवाब यह हो सकता है कि वे अर्थार्जन करें, इस दौड़ में आगे रहें, पर खर्च करने के ऐसे तरीके इस्तेमाल करें जहां उन्हें यश-प्रतिष्ठा मिले और समाज को भी लाभ प्राप्त हो सके। हम अपेक्षा करेंगे कि हमारे अर्थसंपन्न भाई अर्थ प्रदर्शन से दूर रहें, क्योंकि समाज में आपके भाई ऐसी दौड़ दौड़ने की स्थिति में नहीं हैं। वे इस स्पर्द्धा के शिकार हो रहे हैं। उन्हें नीची नजरों से देखा जा रहा है। वे हीन भावना से ग्रसित हो रहे हैं। उनके मन में नये आक्रोश का जन्म हो रहा है।

आवश्यकता है, समाज के बड़े व संपन्न लोग बड़ा दिल करके दूरदर्शिता के साथ सामाजिक समरसता की जाजम पर अपने अन्य भाइयों के साथ बैठ्कर कुछ सार्थक फैसले करें ताकि समाज की अस्मिता को बचाया जा सके। बड़े लोग समाज सुधार में यदि आगे होकर पहल करेंगे तो समाज को बचाया जा सकता है।

पचास वर्ष पूर्व गुरुदेव तुलसी द्वारा प्रारंभ नया मोड़ को नये सिरे से परिभाषित करने की भावना अब जोर पकड़ रही है। समाज के सक्षम और समझदार चिंतनशील लोग जानते हैं कि परिस्थितियां नाटकीय मोड़ ले रही हैं, सामाजिक विषमताओं के नये आलेख लिखे जा रहे हैं। हमें पता नहीं कि समाज व्यवस्था ऐसे बारूद के ढेर पर खड़ी है जहां विषमताओं की एक चिनगारी सबकुछ स्वाह कर सकती है।

प्रश्न सिर्फ अपने समाज से जुड़ा हुआ नहीं है, यह राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है, जिससे हर समाज आक्रोशित और पीड़ित है। आक्रोश के बढ़ते भाव गंभीर चिंता के विषय बन रहे हैं।

पिछले दिनों नया मोड़ की उद्‌गम स्थली मेवाड़ में जैन तेरापंथी मेवाड़ कान्फ्रेंस आमेट में मेवाड़ स्तरीय नया मोड़ चर्चा-परिचर्चा का एक उपक्रम प्रस्तुत किया गया। यहां यह जानना जरूरी है कि मेवाड़ के कार्यकर्ताओं ने सदैव नया मोड़ अभियान का असरदार नेतृत्व किया है। फिर एकबार इसी धरती से नया मोड़ को नया स्वरूप देकर समाज की अस्मिता को बचाये जाने की दिशा में एक पहल है। एक बात दृढ़ता के साथ कही गई कि आश्चर्य है कि तेरापंथ समाज की सर्वमान्य संगठनमूलक केंद्रीय संस्थाएं और उनका नेतृत्व नेटवर्क इस दिशा में मौन साधकर क्यों बैठे हैं? इन्हें पता है कि सामाजिक विषमता की खाई चौड़ी होती जा रही है। समाज अग्नि परीक्षा से गुजर रहा है, ऐसी स्थिति में इन संगठनों की ओर से पहल क्यों नहीं होती?

यह अनदेखी अनेक सवाल खड़े कर रही है। अपेक्षा है, ये संस्थाएं आगे आयें और मौजूदा ढांचे में जिन-जिन विषमताओं के परिष्कार की आवश्यकता है, उस पर दृष्टिपात करें। यथाशीघ्र चिंतन-मंथन के द्वारा कुछ आचार-संहिताएं बनाई जायें ताकि समाज का योगक्षेम संभव हो सके।

विमर्श के कुछ बिंदु

- विवाह आदि अवसरों पर अंधाधुंध अर्थ के दुरुपयोग पर अकुंश लगे।
- भोजन में द्रव्यों की सीमा का नियमन हो।
- अति खर्चीले टेन्ट, विद्युत एवं साज-सज्जा को व्यावहारिक स्तर दिया जाये।
- सड़कों पर किये जाने वाले समाज के व्यक्तियों के अभद्र और भौंडे नृत्यों पर रोक लगे।
- साज-सज्जा के नाम पर सचित फूलों की सजावट बिलकुल बंद कर दी जाये।
- आतिशबाजी को रोकने का नियम बने।
- संगीत सन्ध्या के नाम पर प्रारंभ कार्यक्रम के सांस्कृतिक स्वरूप की सुरक्षा की जाये।
- आरकेस्ट्रा एवं पाश्चात्य गीत-संगीत के प्रदर्शन को विराम दें। इन कार्यक्रमों को घरेलू एवं सांस्कृतिक बनाकर नई संस्कृति बनाई जाए।
- मकान के न्यांगल, नामकरण संस्कार, वैवाहिक जीवन की सिल्वर एवं गोल्डन जुबली एवं अन्य आयोजनों में कम से कम आडंबर करें।
- सामाजिक त्योंहारों में जैन-संस्कार-विधि के प्रयोग को बढ़ावा मिले।
- तपस्या के उपलक्ष में वृहद् भोज, उपहार आदि की परंपरा को सर्वथा नकारा जाये।

- सामूहिक विवाह कार्यक्रमों की ठोस शुरुआत हो। बड़े और अग्रिम पंक्ति के लोग इनमें भाग लेकर शेष लोगों का मार्ग प्रशस्त करें।
- सम्मान मिलने पर, संस्थाओं के दायित्व प्राप्ति पर वृहद भोज का आयोजन न हों।
- मृत्यु भोज न करें एवं न ही ऐसी प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया जाये। मृत्यु से जुड़े सामान्य भोज कार्यक्रमों में मिठाई का उपयोग नहीं हो।
- स्मृति संबल हेतु गुरु-दर्शन या ऐतिहासिक स्थल भ्रमण कार्यक्रम को ज्यादा विस्तार न दिया जाये। इसकी सीमाएं सुनिश्चित करें।
- आचार्य श्री महाश्रमणजी के आह्वान पर नशा-मुक्त समाज को लेकर कार्य-योजना बने,और उसकी पालना निष्ठा से हो सके, ऐसे दीर्घकालीन प्रयास शुरू किये जाएं।
- तलाक व पलायन की बढ़ती घटनाओं को मध्यनजर रखते हुए ऐसे प्रसंगों में संबंधित पार्टी यथासंभव कोर्ट कचहरी से बचे। इसके निराकरण हेतु संघीय संस्थाओं का उपयोग किया जाये।

विनम्रतापूर्वक कुछ बिंदु सुझाये गये हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं के मध्यनजर आप अन्य समस्याओं को भी इस अभियान में जोड़ सकते हैं। पूरे समाज के स्तर पर हमारी तीनों संघीय संगठनमूलक संस्थाएं गहन विचार विमर्श करें और उसकी क्रियान्विति की दिशाएं सुनिश्चित करें ताकि **नया मोड़** को नवीन संदर्भ में प्रस्तुति देकर समाज की समरसता को कायम रखा जा सके और आने वाली समस्याओं से मुक्त समाज में नए आदर्शों के स्वस्तिक रचे जा सके।

मर्मस्पर्शी दृष्टिकोण

एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिलने उनके एक मित्र आये। बातचीत के दौरान उन्हेंने चुटकी लेते हुए कहा–पंडितजी! आप की इतनी उम्र हो गयी है और आप गुलाब के फूल की तरह ताजे दिखाई देते हैं। मैं उम्र में आपसे छोटा हूं। लेकिन बूढ़ा दिखाई देने लगा हूं। आपकी इस ताजगी का रहस्य क्या है?

पण्डितजी हंसकर बोले–इसके तीन कारण हैं–

1. मैं बच्चों के साथ घुलमिल जाता हूं। उन्हें प्यार करता हूं। जब तक उनके साथ रहता हूं, मेरा बचपन लौट आता है। उनका भोलापन और निश्च्छलता मुझे बहुत प्रभावित करती है। बेलाग सीधी सपाट बातें करना उनकी सचाई है। बालक-एकदम वर्तमान में जीता है, बड़ी बेफिक्री और अनासक्त भाव से। युवा-भविष्य में, कल्पनाओं में और बड़ी-बड़ी आकांक्षाओं में जीता है सुख-दुख की संवेदनाएं उसके साथ जुड़ जाती हैं। वृद्ध अपने अतीत और स्मृतियों के सहारे जीने लगता है। वृद्ध का भविष्य ज्यादा नहीं होता। अत: बालक का वीतराग भाव–हमें तरोताजा बने रहने के लिए प्रेरित करता रहता है। उनके मित्र ने पूछा–और दूसरा कारण? पंडितजी बोले–

2. मैं प्रकृति के साथ जीने का भाव रखता हूं। कलकल बहती नदी, पहाड़ से गिरते झरने, जल प्रपात का धवल धुआं, वनों की हरियाली, चहकते रंग-बिरंगे पक्षी, वनाच्छादित हिल स्टेशन, रात्रि में चमकता चांद और झिलमिलाते तारे, ऐसी प्राकृतिक संपदायें हैं। जिन्हें देखकर मैं अपने को भूल जाता हूं और उनसे घनिष्ठ नाता जोड़ लेता हूं। आगंतुक मित्र पंडितजी की बातें बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने जब तीसरा कारण जानना चाहा तो पंडितजी बात आगे बढ़ाते हुए कहने लगे–

3. प्राय: लोग छोटी-छोटी बातों में उलझे रहते हैं, वे समय की कीमत को गौण कर क्षुद्र स्वार्थो में अपना कीमती दिमाग खपाते रहते हैं। मेरे दिमाग पर ऐसी छोटी-छोटी बातों का कोई खास असर नहीं पड़ता। मेरा दृष्टिकोण सकारात्मक और रचनात्मक होता है। हर बात को आलोचना के दायरे में नहीं लेना चाहिए। यही कारण है कि मेरे राजनीतिक विरोधी भी मेरी निजी जिन्दगी में एक अच्छे दोस्त हैं। उनके सुख-दु:ख और संवेदनशीलता के क्षणों में मैं उनके साथ होता हूं। इतना कहकर पंडितजी खिलखिलाकर हंस पड़े। आगंतुक पंडितजी के इन मर्मस्पर्शी दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए।

आचार्य महाश्रमण की ऐतिहासिक अहिंसा-यात्रा

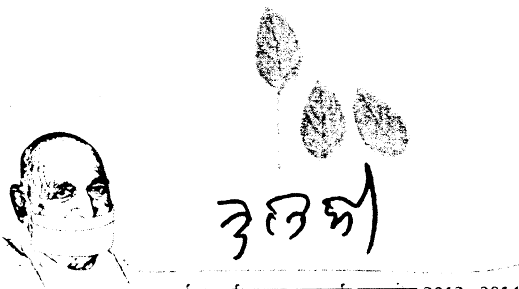

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 2013 - 2014

जैन परंपरा की आचार्य परंपरा में एक नाम है–आचार्य महाश्रमण, जो महातपस्वी, महावर्चस्वी और महायशस्वी हैं। जो स्वयं महान साधक हैं। आत्मोदय की दिशा में ऊंचाइयों की ओर प्रस्थित हैं पर साथ-साथ जन-जन के कल्याण में भी संपूर्ण जीवन समर्पित कर रखा है। पद-यात्रा जिनकी संतता का महान व्रत है।

सन् 2014, 9 नवंबर का दिन देश के ऐतिहासिक स्थल लाल किले से उन्होंने राष्ट्रीय और धार्मिक भूमिका पर ऐतिहासिक यात्रा की शुरुआत की है। यहां से प्रारंभ होने वाली उनकी अंहिंसा-यात्रा अनेक देशों तक पहुंचेगी। भारत के अनेक प्रांतों में नैतिकता का सिंहनाद करेगी, मानव जाति को नैतिक जीवन मूल्यों की सीख देगी। लोगों के दिल और दिमाग में धर्म के प्रति आस्था और विश्वास जगाएगी।

आचार्य महाश्रमण अपने पूरे धर्मसंघ के साथ गांव-गांव, नगर-नगर, शहर-शहर में पधारेंगे। आम आदमी को दर्शन देंगे। जीवनशैली बदलने की सीख देंगे। आप नेपाल, भूटान, आसाम, बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि अनेक राज्यों में पधारते हुए जन-मानस को अणुव्रत का जीवन जीने की प्रेरणा देंगे। तेरापंथ संघ के इतिहास में यह पद-यात्रा एक नया आलेख लिख रही है। नया इतिहास रचा जा रहा है। इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य निर्धारित किया गया है–

• सद्‌भावना • नैतिकता • व्यसन-मुक्ति

आचार्य महाश्रमणजी चाहते हैं कि मानव मानव के बीच किसी भी तरह का भेदभाव न रहे। न जाति का, न धर्म-संप्रदाय का, न वर्ग-विशेष का, न अमीरी-गरीबी का। न विचारों में वैमनस्य रहे और न दिलों में किसी के प्रति घृणा, नफरत, वैर-भाव रहे। सबमें एक-दूसरे के प्रति सद्‌भाव रहे। सब एक दूसरे का हित चाहे। वे चाहते हैं कि हर व्यक्ति के भीतर प्रामाणिकता, ईमानदारी, सचाई, प्रेम, करुणा, भाईचारा जैसे मानवीय नैतिक मूल्यों का विकास हो। परिवार, समाज और देश में हर व्यक्ति नशा-मुक्त चेतना का विकास करे। किसी में भी कोई ऐसा नशा न रहे जो शरीर को ही नहीं, मन और भावों को भी लील जाए। वे स्वस्थ समाज और स्वस्थ देश का सपना देख रहे हैं।

और इसी दृढ़-संकल्पी चेतना के साथ आचार्यश्री महाश्रमण ने अपनी अहिंसा यात्रा का मंगलाचरण किया है। हम सभी इस पुनीत शुभ अवसर पर मंगलकामना करते हैं कि आपकी यह यात्रा सफल हो, सुफल हो और अनेक उपलब्धियों से समृद्ध हो। आपका हर चरण सत्यं, शिवं और सुंदरं से जुड़ता रहे।

अहिंसा यात्रा का पहला उद्देश्य

सद्भावना

आज की ज्वलंत समस्याओं में से एक है पारस्परिक सद्भाव और भरोसे का निरन्तर घटता हुआ ग्राफ। सचमुच हम उस देश के वासी हैं जहां 'अतिथि देवो भव' की भावना अन्तरनिहित थी। यहां भाईचारे को प्रधानता दी जाती रही है। इसमें न अमीरी आड़े आती है और न गरीबी, न जाति-धर्म आदि की भेद रेखा ही बाधक बनती है।

सद्भाव का सीधा अर्थ है परस्पर भाईचारे, मान-सम्मान के भाव वर्धमान बनते रहें। एक-दूसरे के प्रति दृष्टिकोण सम्यक् हो। परस्पर सहयोग की सद्इच्छा हर समय कार्यकारी बनी रहे।

यदि समाज का, देश का कोई भी भाई कष्ट में है, तो उसकी सहभागिता की दिशा में त्वरित कदम उठाये जाने की मानसिकता सद्भाव की पहली सीढ़ी हो सकती है। जो व्यक्ति शोषित है, पीड़ित है उसके दर्द को भी समझना पड़ेगा, इसके लिए कोरे उपदेश पर्याप्त नहीं होंगे। उसे प्रायोगिक धरातल प्रदान करना पड़ेगा। आगे आकर उसके आंसू पोंछने होंगे।

भारतीय समाज व्यवस्था में जाति, रंग, बड़े-छोटे के आधार पर असद्भाव के भाव कतई स्वीकार्य और मान्य नहीं हुए हैं। यहां सदैव पारस्परिक सद्भाव को ही अहमियत प्रदान की गई है।

सभी प्रकार की समस्याएं चाहे वे राजनैतिक हों, सामाजिक हों, वैयक्तिक हों, उन्हें पारस्परिक सद्भाव से ही मिटाया जा सकता है। यदि परस्पर सद्भाव के भाव बनेंगे तो सहज ही शांति का अनुभव हो पायेगा।

परस्पर सद्भाव का अर्थ है किसी व्यक्ति, समुदाय और सम्प्रदाय पर आक्षेप नहीं किया जाये। घृणा, तिरस्कार और नफरत के भावों को फैलाने की कोशिश न हो। किसी के साथ अवांछनीय व्यवहार न किया जाये। किसी धर्म-संप्रदाय के प्रति असोहार्द के भाव न रहें, धार्मिक उन्माद को कभी भी शस्त्र बनाकर जनभावनाओं को न उभारा जाये। ये कुछ बिन्दु हैं जिन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है क्योंकि इनके अतिक्रमण से असद्भाव को जगह बनाने का मौका मिल जाता है, भाईचारे के भाव खंडित हो जाते हैं। परस्पर विश्वास का स्थान अविश्वास ले लेता है।

यदि सद्भाव के भाव बढ़ेंगे तो हर व्यक्ति निष्ठता का अनुभव करेगा। पारस्परिकता के सूत्र मजबूत होंगे। इससे समाज की ताकत बढ़ेगी। राष्ट्रीयता की दृष्टि से भी इसके ठोस और सकारात्मक परिणाम सामने आयेंगे।

अहिंसा यात्रा का दूसरा उद्देश्य

नैतिकता

भारतीय लोक जीवन में नैतिकता की चर्चा सहस्राब्दियों से होती रही है। इस देश में मूल्यों की अहमियत हर क्षेत्र में देखी जा सकती है। भारत के विश्व गुरु कहे जाने का राज भी यही है। यहां के ऋषि-मुनियों ने इस दिशा में सार्थक प्रयत्न भी किये हैं।

भारत में नैतिकता अध्यात्म पर आधारित है जबकि अन्य पश्चिमी देशों में इसका आधार राष्ट्रीयता है। यहां यह बताया गया है कि तुम दूसरों से जैसा व्यवहार चाहते हो वैसा ही व्यवहार तुम भी दूसरों के प्रति करो।

गुरुदेव तुलसी कहा करते थे कि व्यक्ति धार्मिक होने का दावा करता है पर उसके जीवन में यदि नैतिकता और प्रामाणिकता नहीं है तो यह कैसी धार्मिकता है? एक व्यक्ति मंदिर या अपने धर्म स्थान में अलग ही छवि रखता है, वह रामनामी चादर ओढ़े हुए है, इसके विपरीत अपने कार्यक्षेत्र में, परिवार में, व्यवसाय में उसका आचरण घोर अनैतिक, अप्रामाणिक और क्रूरतापूर्ण है यह वीभत्स चित्र है। इस दोहरे मापदंड से व्यक्ति और समाज को बचना होगा। यह आज की अहम आवश्यकता है।

नैतिकता सिर्फ उपदेश की वस्तु नहीं वरन यह तो जीवन का सारतत्त्व है। नैतिकता पंथों और ग्रंथों में नहीं इसे तो संसारों में स्थापित करना होगा। यह जो धारणा बनाई जा रही है कि नैतिकता से जीवन यापन नहीं हो सकता। उसे मिटाना पड़ेगा। इस दिशा में कुछ साहसी कदम उठाने पड़ेंगे।

नैतिकता के जागरण की दिशा में जब प्रयत्न किये जाते हैं तब कुछ कठिनाइयां रास्ते को अवरुद्ध करती हैं, उसमें सबसे बड़ी बाधा है गरीबी। गरीबी में पल रहे व्यक्ति का नैतिक बल जमाने की ठोकरें खाते-खाते चूक जाता है। परिस्थितियों से वह त्रस्त हो जाता है, उसका धैर्य जवाब दे देता है और उसके कदम अनैतिक आचरण की दिशा में अनायास बढ़ जाते हैं। अर्थ आधारित मानदण्ड, अर्थ का दुरुपयोग और प्रदर्शन, सामाजिक जीवन में अर्थ की असमानता, बड़े लोगों का बड़प्पनभाव में भी कुछ कारण है कि समाज का एक वर्ग अनैतिक और विद्रोही बनने को मजबूर हो जाता है। चूंकि एक अनैतिक आचरण से उसे तात्कालिक लाभ मिल जाता है, जिससे उसके अन्दर एक धारणा बल पकड़ लेती है कि बुराई का पल बुरा नहीं होगा, और यही अनास्था का बीज धीरे-धीरे विस्तार पाकर समूचे लोक जीवन की धारणाओं को गलत दिशा प्रदान करने में सफल हो जाता है।

दूसरी ओर यदि व्यक्ति का जीवन नैतिक और प्रामाणिक होगा, उसके विचारों में उदारता बढ़ेगी, उसका व्यवहार हर समय कपट रहित होगा, किसी को ठगने या धोखा देने की मनोवृत्ति नहीं रहेगी, वह सहिष्णु बना रहेगा, दूसरों के प्रति भी सहनशीलता बरतेगा, उसके विचार सकारात्मक रहेंगे। जहां नैतिक मूल्य प्रतिष्ठित होंगे वहां न्याय की प्राथमिकता होगी, शोषण के भाव कतई नहीं होंगे और हर व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित रहेगी।

अहिंसा उवाच

अहिंसा शाश्वत सुखों का सागर है
अहिंसा आत्म-शुद्धि का साधन है।
अहिंसा विश्व शांति का राजमार्ग है।
अहिंसा व्यक्तित्व विकास की कसौटी है।
अहिंसा समता की अनुभूति का सुपथ है।
अहिंसा प्रलोभन-मुक्ति की प्रक्रिया है।
अहिंसा मानसिक चिकित्सा पद्धति है।
अहिंसा सामंजस्य का महान सूत्र है।
अहिंसा आत्मोपम्य का सिद्धांत है।
अहिंसा चरित्र की महान सम्पदा है।
अहिंसा हृदयपरिवर्तन का शीर्ष सिद्धांत है।
अहिंसा सम्यक् आजीविका की प्रविधि है।
अहिंसा संग्रह-चेतना पर नियंत्रण है।
अहिंसा असंतुलन में संतुलन का संबोध है।
अहिंसा संस्कार परिवर्तन की प्रक्रिया है।
अहिंसा व्यवस्था परिवर्तन की महान शक्ति है।
अहिंसा सकारात्मक भावों का समवाय है।
अहिंसा निःशस्त्रीकरण की प्रयोगभूमिका है।
अहिंसा सह अस्तित्व की जागृत चेतना है।
अहिंसा समन्वय और साम्यवाद का मार्ग है।

मुनि मोहजीत कुमार

धर्मग्रंथों में तो यह भी कहा गया है कि यदि व्यक्ति नैतिक नहीं है तो भले ही एक बार उसे सुख-शांति का अहसास हो जायेगा पर वह क्षणिक होगा, इसकी अवधि लंबी नहीं होगी। और अन्ततः व्यक्ति अपनी नजरों से स्वयं गिर जायेगा। समाज में भी उसकी अहमियत और विश्वास समाप्त हो जायेगा।

जहां भय और प्रलोभन नहीं होते वहां नैतिकता सुरक्षित रह सकती है। यह भी कहा गया है कि यदि धरातल नैतिकता का है तभी धर्म का ठहराव सम्भव है। यदि व्यक्ति नैतिक है तो उसे मानसिक स्वास्थ्य भी प्राप्त होगा, उसे सहज संतोष की अनुभूति होगी।

वस्तुतः नैतिकता वह सद्गुण है जो जाति, प्रांत, लिंग, रंग की सीमा से आबद्ध नहीं होता। यदि मनुष्य को सही मनुष्य बनकर रहना है तो व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनैतिक जीवन में नैतिक मूल्यों की स्थापना हर हालत में करनी ही होगी। नैतिकता समाज की अहम आवश्यकता है, उसका अवमूल्यन विषमता को पैदा करेगा जो संपूर्ण समाज के लिए घातक होगी। नैतिकता अंतःप्रेरणा है, इसे थोपा नहीं जा सकता पर यह जीवन का यथार्थ है जिसे भोग और अनुभव किया जा सकता है।

आज नैतिक मूल्यों का संकट गहरा रहा है। इस मूर्च्छित मानसिकता को संजीवनी बूंटी की आवश्यकता है। धर्म क्षेत्र के गुरु-आचार्यों का कठोर श्रम इस दिशा में यदि आता है तो मूल्यों की स्थापना की दिशा में प्रभावी परिवर्तन लाये जा सकते हैं। अमीर से गरीब तक, शहर से गांव तक हर क्षेत्र से नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए प्रभावी प्रयत्न किये जाने आवश्यक प्रतीत हो रहे हैं। ❑

अहिंसा यात्रा का तीसरा उद्देश्य

व्यसन-मुक्ति

नशा (व्यसन) का सीधा सरल अर्थ यही है कि ऐसी वस्तु का सेवन जो पारिवारिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उचित नहीं है। ऐसी प्रवृत्ति जो असम्यक् है, अनाचरणीय है, जिसका सीधा सम्बन्ध स्वास्थ्य और समाज व्यवस्था पर पड़ता है। जिससे मानसिकता दूषित होती है, संस्कार खंडित होते हैं।

सचमुच व्यसन हजार समस्याओं को आमंत्रण दे देता है। व्यसन व्यक्ति के जीवन का रस सोख लेता है और उसे गहरे अंधकार की ओर ढकेल देता है। व्यसनी व्यक्ति की चेतना लुप्त प्रायः हो जाती है। क्या करना है क्या नहीं करना है, इसका उसे बोध नहीं रहता। वक्त के साथ व्यसनों के मुखौटे बदलते रहे हैं। पुराने व्यसन कम हो रहे हैं या उनके रूप बदल रहे हैं तो नये व्यसनों का प्रादुर्भाव हो रहा है। कल तक भांग, गांजा, देशी शराब, ताड़ी, तम्बाकू आदि व्यसन शीर्ष पर थे। आज इनके साथ अंग्रेजी शराब, व्हिस्की, हेरोइन, गुटके आदि भी जुड़ गये हैं। सरकार राजस्व की प्राप्ति के लिए इन जानलेवा वस्तुओं के वितरण में एक तरह से स्वयं सहभागी बन रही है। आकर्षक विज्ञापनों की खुली छूट है। नई-नई आकर्षक पैकिंग में इन वस्तुओं को लोक जीवन में स्थापित किया जा रहा है। एक तरह से यह अकरणीय प्रयास है।

जिस परिवार और व्यक्ति में व्यसन को पनाह मिलती है, वह व्यक्ति और परिवार अंततः पतन के कगार तक पहुंच जाता है। परिवार का एक भी व्यक्ति इस चक्रव्यूह में फंस गया है तो शेष सदस्य बेबश बन जाते हैं। व्यसन में अंधा व्यक्ति कोई भी कुकृत्य करते हुए नहीं घबराता। इससे नैतिक पतन सुनिश्चित हो जाता है। समाज में आचार को जगह मिलती है।

यह भी देखा गया है कि ये व्यसन समाज की आवश्यकता कतई नहीं हैं। वरन फैशन, कुसंगत और अन्धानुकरण से इसका प्रवेश लोक जीवन में हो रहा है। सोसायटियों, क्लबों एवं समारोहों में इनका खुला प्रयोग शान-शौकत और विकास का प्रतीक माना जाता है। इससे खुले आम यह बुराई विस्तार पा रही है। कुत्सित विज्ञापनों की प्रवृत्ति ने इनकी पैठ जमाने में बहुत बड़ी भूमिका का निर्वाह किया है। जो व्यक्ति एक बार इस चक्रव्यूह में फंस जाता है, उसका बाहर निकलना कठिन और असहज बन जाता है।

सबसे बड़ी चिंता का विषय यह है कि व्यसनों की यह हवा महलों से झोपड़ियों तक, शहरों से गांवों तक पहुंच चुकी है। गरीब से गरीब व्यक्ति शराब आदि के नशे में अपनी गरीबी के दामन को पाक साफ नहीं रख पाता। वह सदैव गरीब ही बना रह रहा है। नशे की यह प्रवृत्ति समूचे क्षेत्र को दीमक की तरह चाट रही है। इस पर त्वरित लगाम लगाने की आवश्यकता है।

नशा नाश का द्वार है। नशा जीवनी-शक्ति को समाप्त कर रहा है। नशे के दुष्परिणाम चाहे वे पारिवारिक हो, सामाजिक हो, वैयक्तिक स्वास्थ्य से जुड़े हो, आईने की तरह सुस्पष्ट हैं। आवश्यकता है नशामुक्ति के पुरजोर प्रयत्न किये जायें। इस हेतु सेमिनारों के वृहद् समायोजन हों, प्रायोगिक प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलें जिनमें नशे से होने वाले नुक्सानों की प्रायोगिक प्रस्तुतियां दी जाये।

संत, समाज-सुधारक जन अब चुप नहीं बैठें, उन्हें लोक जीवन से जुड़कर इस विभीषिका से समाज को मुक्ति दिलानी होगी। ठोस और प्रभावी प्रयत्नों से ही इस समस्या के समाधान की दिशाएं खुल सकती हैं। वह समाज धन्यवाद का पात्र है जिसकी युवापीढ़ी में नशे के संस्कार नहीं हैं।

जब मैं प्रार्थना कर रहा था

जब मैं प्रार्थना कर रहा था,
तब मंच पर ईश्वर तस्वीर में अनुपस्थित था,
हम मंत्र की तरंग व्यक्ति की तुलना,
भूखे इंसान की जिजीविषा से कर रहे थे,
वे विदेशी कार से उतरकर कालीन पर चलते हुए,
योजनाएं बांट रहे थे।
तुम प्रार्थना की मुद्रा में खड़े होकर,
पेड़ के नीचे खड़ी लड़की को देख रहे थे,

जब मैं प्रार्थना कर रहा था,
तब पैरों के नीचे से आशावाद फिसल रहा था,
हम धर्म को सांप्रदायिक पीड़ा कहकर,
उसकी तुलना अफीम से कर रहे थे,
वे आकड़ों की रस्सी बांधकर,
विकास का तमाशा दिखा रहे थे,
तुम धर्म गुरु की पीठ के पीछे खड़े होकर,
धुम्रपान कर रहे थे,

जब मैं प्रार्थना कर रहा था,
तब चुपके से, सपने नदी में डूबकर जान दे रहे थे,
हम जीने के लिए, खूबसूरत सपनों की अस्मिता को,
जरूरी बता रहे थे,
वे अपना लच्छेदार भाषण समाप्त कर,
श्रोताओं से तालियों की फरमाइश कर रहे थे,
तुम छुपकर गुलेल से,
उनकी शानदार टोपी का निशाना साध रहे थे,

जब मैं प्रार्थना कर रहा था,
तब प्रतिमा के गले की माला मुरझाने लगी थी,
हम असमय ही मुरझाने वाले फूल जैसे,
बच्चों की याद में शोकव्यस्त थे,
तुम संगमरमर से निर्मित समाधि पर
गली के कुत्ते को उछाल रहे थे,

जब मैं प्रार्थना कर रहा था,
तब मेरी आस्थाएं
मेरा मुंह चिढ़ा रही थीं,
हम टूटते जीवन-मूल्यों की तुलना
सूखे हुए वृक्ष से कर रहे थे,
वे भीड़ की तरफ आश्वासन
थैलियों में भरकर उछाल रहे थे,
तुम कागजों पर
गालियां लिखकर,
हवाई जहाज बनाकर उड़ा रहे थे।

जब मैं प्रार्थना कर रहा था,
तब मेरी आवाज
ईश्वर नहीं सुन रहा था,
हम निराशा के पाताललोक की गहराई
जानना चाह रहे थे,
वे गरीबों के धूल-धुसरित पैरों पर,
माथा रगड़कर
आशीश मांग रहे थे,
तुम प्याले में बची हुई जूठी शराब को
गटागट पी रहे थे।

जब मैं प्रार्थना कर रहा था,
तब ईश्वर नींद में सो रहा था,
हम ईश्वर के व्यक्तित्व के बारे में
तरह-तरह की कल्पना कर रहे थे,
वे हवाई अड्डे पर
साढ़ियां चढ़ते हुए,
तस्वीरें खिचवा रहे थे,
तुम नशे में बौराकर,
दीवारों से चमकीले पोस्टर नोच रहे थे

(पुस्तक: आत्म निर्वासन से)

चित्त-शुद्धि के साधन

श्री चन्द्रप्रभ

एक वृद्ध संत अपने युवा शिष्य के साथ पद-यात्रा कर रहे थे। यात्रा के दौरान एक बरसाती नाला उनके रास्ते में पड़ा। जैसे ही नाला करीब आने लगा, शिष्य निवृत्ति के लिए पीछे रह गया और गुरु आगे चले आए। नाले को पार करने के लिए जैसे ही वृद्ध संत ने एक कदम आगे बढ़ाया कि किनारे खड़ी एक युवती ने वृद्ध संत से कहा–संतप्रवर, सांझ का समय करीब है। नाले को पार करने का कोई साधन नहीं है। नाले में अकेले उतरने से कतराती हूं। आप मेरा हाथ थाम लें, तो इस किनारे से उस किनारे पर आराम से निर्भय होकर पहुंच जाऊं।

वृद्ध संत ने युवती से कहा–मैं नारी का हाथ पकड़ना तो बहुत दूर की बात है, किसी नारी का स्पर्श भी नहीं करता। मैं तुम्हें नाला पार नहीं करा सकता। वृद्ध संत उस युवती को वहीं छोड़कर नाले को पार कर गये। इतने में ही युवा शिष्य वहां पहुंचा। युवती ने उससे भी वही अनुरोध दोहराया। युवा संत ने कहा–मुझे कोई दिक्कत नहीं है, पर आशंका है कि कहीं बीच में कोई गड्ढा न आ जाए, इसलिए अच्छा तो यह होगा कि तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ। युवती ने ऐसा ही किया और दोनों किनारे पर पहुंच गये।

जिन क्षणों में युवा संत नदी पार कर रहा था, वृद्ध संत की दृष्टि उस पर पड़ी। संत ने मन-ही-मन सोचा–जिस नारी को मैंने स्पर्श करने से भी मना कर दिया था, उसे शिष्य कंधे पर बिठा कर ला रहा है। संत के मन में खलबली मच गई। वृद्ध संत और शिष्य एक-डेढ़ कोस चले आए, तो वृद्ध संत से नहीं रहा गया। उन्होंने शिष्य से कहा–आज तुमने एक ऐसा अपराध किया है, जिसका तुम्हें प्रायश्चित्त करना होगा। शिष्य ने पूछा–भगवन्, मेरा अपराध क्या है? मैंने क्या अपराध किया है, जिससे मैं उसका प्रायश्चित्त करूं? गुरु ने कहा–तूने नारी को स्पर्श ही नहीं किया है, उसे कंधे पर बिठाया है। शिष्य हंसा और कहा–ओह, तो बात यह है। मैं तो उस महिला को उसी नाले के किनारे पर ही उतार कर आ गया था, मगर आप उसे यहां तक ले आए हैं!

घटना घटने के बाद अपने मन में रहने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया ही मनुष्य के लिए मानसिक घुटन, तनाव और बंधन है। उस घटना के बारे में मन में चलने वाला सोच-विचार ही मनुष्य के मन का रोग है। किसी से मिलने के बाद उसके प्रति मन में पलने वाली प्रतिक्रिया ही मनुष्य के मन की समस्या है। तीर्थंकर-पुरुष के सामने भी प्रतिदिन हजारों-हजार आदमी आते, क्रिया होती, मगर प्रतिक्रिया नहीं होती। जो व्यक्ति अपने मन से मुक्त और निर्लिप्त हो चुका है, उसके लिए ये बाह्य प्रभाव कोई मूल्य नहीं रखते। ऐसे व्यक्ति तो आईने की तरह होते हैं। कोई उनके

पास गया, तो उसने अपनी छवि उस आईने में देखी। वह व्यक्ति वहां से रुखसत हुआ, तो आईना पहले की तरह साफ। यही चेतना की साधना है।

निर्विचारणा-निर्विकल्पना की स्थिति साधना है। प्रतिक्रियाएं जन्म लेती हैं अहंकार के कारण, मूर्च्छा और तादात्म्य के कारण। ध्यान तादात्म्य से निर्लिप्त होने का मार्ग है। प्रतिक्रियाओं से मुक्ति ही ध्यान की उपलब्धि है। गत-आगत, बीता बिन-आया, दोनों की उधेड़बुन से पार होना ही चित्त के आकाश का निरभ्र होना है बादल-रहित, उन्मुक्त।

जो बीत चुकी, सो बीत चुकी। अतीत कभी लौटकर नहीं आ सकता। यह जानते हुए भी आदमी अतीत से मुक्त नहीं हो पाता। वह कभी मृत पत्नी की स्मृतियों में आंसू ढुलकाता है, तो कभी गुजरे पलों को याद करके आहें भरता है। स्मृतियों का नाम ही तो बंधन है। स्मृतियां, धारणाएं, मान्यताएं, कल्पनाएं और उत्तेजनाएं—ये पांचों तत्त्व ऐसे हैं, जिनके द्वारा मनुष्य का मन चंचल, अस्थिर और सक्रिय हो जाता है और वह अंततः इन्हीं में बह जाता है। इन्हीं का हो जाता है।

संसार का निर्माण भगवान नहीं करता, बल्कि मनुष्य का अपना मन करता है। मनुष्य का मन ही वह चित्रकार है, जो दिन-रात कई-कई तरह के चित्र उकेरता रहता है। उसके मन की स्थिति बिल्कुल ऐसी है कि जैसे एक दर्शक तीन घंटे की फिल्म देख रहा है और फिल्म देखते-देखते कभी तो उसकी आंखों में आंसू आते हैं, कभी होंठों पर मुसकराहट फैल जाती है, तो कभी आक्रोश में मुट्ठियां तन जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि तब वह व्यक्ति एक दर्शक न रहकर स्वयं फिल्म का पात्र बन जाता है। द्रष्टा दृश्य में खो जाता है। यहीं से व्यक्ति के हाथ से उसका व्यक्तित्व छिटक जाता है। जीवन में संसार का परिभ्रमण प्रारंभ हो जाता है।

आदमी अपने जीवन को स्मृतियों के ताने-बाने से इस तरह बुन लेता है कि लगता है उसका जीवन एक उपन्यास है। उपन्यास, जिसके लंबे-चौड़े कथानक की महज दो-चार घटनाएं स्मृति-पटल पर टिकी रहती हैं। आदमी अपना पूरा जीवन जी चुका होता है, लेकिन उपलब्धि कुछ भी हाथ नहीं लगती। उसका जीवन किसी पढ़े हुए उपन्यास जैसा हो जाता है। मन की उधेड़बुन का एक और कारण है—विचारपूर्वक न बोलना। आप दिनभर लोगों से मिलते हैं, बातचीत करते हैं और उनके जाने के बाद सोचते हैं कि ऐसा न कहता तो ठीक रहता, मुझे यह भी कहना चाहिए। बेहतर होगा बोलते वक्त यह विवेक रखो कि तुम्हें क्या बोलना है। बोलने के बाद आप कुछ भी सोचते हैं, तो उस सोच-विचार का कोई अर्थ नहीं है।

जो बीत गई सो बात गई,
तकदीर का शिकवा कौन करे!
जो तीर कमां से निकल गया,
उस तीर का पीछा कौन करे!

जब तक कमान से तीर न छूटा, तब तक हम एक बार नहीं, सौ-सौ बार निशाना साध सकते हैं, पर जब कमान में से तीर निकल गया, तो फिर आंखों को गड़ाने का कोई औचित्य नहीं है। अपने में न बीती बातों की उधेड़बुन रखो और न भविष्य की। जो समय अभी तक आया नहीं, उसके बारे में कोरी कल्पनाएं क्यों की जाएं? हमारा जीवन वर्तमान-सापेक्ष हो।

मैंने सुना है; भगवान बुद्ध वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। उनके पास उनके कुछ शिष्य भी थे। भगवान बैठे-बैठे ही सहसा मुसकरां पड़े। उनके एक शिष्य आनंद ने कहा—भगवन, आप अचानक हंस पड़े। न कोई बोल रहा है, न कोई आ-जा रहा है। आखिर बात क्या है? भगवान ने कहा—हां, बात तो है। मैं देख रहा हूं कि यहां से कुछ दूर नदी के किनारे एक युवक खड़ा है। वह युवक स्नान कर रहा है। उसके पास उसकी सामान से लदी बैलगाड़ी खड़ी है। अभी-अभी उसके मन में विचित्र तरंगें पैदा हो रही थीं। वह कल्पनाएं कर रहा था कि वह यहां से बाजार पहुंचेगा। इस बैलगाड़ी पर जितना सामान है, उसे बेचेगा। उससे चौगुना कमाएगा, फिर उससे आठ गुना कमाएगा। वह देश-परदेश में भ्रमण करेगा और

वहां से अथाह संपत्ति कमाकर लाएगा। वह इस संपत्ति से राजमहल बनवाएगा। सात-सात सुंदरियों से विवाह करेगा। मुझे हंसी इस बात की आई कि उसे नहीं पता कि वह जो कल्पनाओं के इंद्रधनुष रच रहा है, वे कभी पूरे नहीं होंगे, क्योंकि सात दिन के बाद उसकी मृत्यु हो जाएगी। आनंद, उस आदमी की गति सुधर जाए, इसलिए तुम इतना करो कि जाकर उसे यह सूचना दे दो।

शिष्य पहुंचे और उस युवक को सारी बात बता दी। यह सुनते ही वह बेहोश हो गया। शिष्य उसे बुद्ध के पास ले आए। भगवान ने कहा-वत्स, एक बात ध्यान रखो, मनुष्य की कभी मृत्यु नहीं होती। जीवन कभी समाप्त नहीं होता। जीवन का केवल परिवर्तन होता है। सत्य केवल रूप बदल सकता है, मर नहीं सकता। अभी तक तो सात दिन बाकी हैं। अगर तुम चाहो तो इन सात दिनों में भी बहुत कुछ संभव है। तब यह कहा जाता है कि सात दिन पूरे हुए, उससे पहले ही उसका निर्वाण संपन्न हो चुका था, मोक्ष का महोत्सव घटित हो चुका था। मृत्यु हो न पाई, अमरत्व पहले आ गया। हम जीवन-सापेक्ष हों।

चित्त की शुद्धि चाहिए, एक सार्थक निर्मल दिशा चाहिए। यदि व्यक्ति का मन खराब होगा, तो उसकी इंद्रियां और उसके जीवन की गतिविधियां स्वतः खराब होंगी। मन में विकृति है, तो आंख कभी पवित्र नहीं हो सकती। किसी भी कार्य के अच्छे या बुरे होने का अगर कोई आधार है, तो यही है कि मनुष्य का मन कितना अच्छा या बुरा है।

मैं चाहता हूं कि व्यक्ति का पूरा जीवन ही तपस्या बन जाए। आपने उपवास का प्रत्याख्यान लिया, दिनभर भोजन नहीं किया, यह भी तपस्या है और अगर चौबीस घंटे के दौरान किसी व्यक्ति ने आपको चार बार गालियां दीं और चारों बार आपने उनको सहन कर लिया, तो यह भी तपस्या ही है। एक तपस्या शरीर की है, दूसरी तपस्या मन की है। जो व्यक्ति उपवास न कर पाए वह दो घंटे का मौन रखे। इस बात का पूरा विवेक रखे कि उन दो घंटों के दौरान कोई भी प्रतिक्रिया आप द्वारा व्यक्त न हो। यह अभ्यास निश्चय ही आपकी सहिष्णुता में अभिवृद्धि करेगा।

चित्त की शुद्धि चाहिए। जिस तरह आप मंदिर आते हैं और उससे पहले स्नान करते हैं उसी तरह भीतर की आत्मा को जीने के लिए चित्त-स्नान करना जरूरी है। मनुष्य की अंतरात्मा में दीपक तो प्रज्वलित है, लेकिन बाती के इर्द-गिर्द कुछ कालिख इकट्ठी हो चली है। हमें उसी कालिख को हटाना है। जीवन तो ज्योतिर्मय है, स्वर्गमय है। स्वर्ग और नरक, दोनों को अपने साथ लिये चलता है मनुष्य। नरक टला कि स्वर्ग का फूल खिला। चित्त की निर्मलता में ही स्वर्ग है।

चित्त शुभ, शुद्धत्व और पवित्रता की ओर बढ़े, इसके लिए उसे हमें सार्थक दिशा देनी होगी। चित्त की मलिनता के चलते ही हमें हमारा विशुद्ध प्राण-तत्त्व, चैतन्य-तत्त्व हाथ नहीं लग पा रहा है। सूरज कहीं जाता नहीं है, अंधेरे में वह हमें दिखाई नहीं देता। पृथ्वी घूम जाती है, सूरज से रिक्त नहीं होता आकाश। हम ही उस ओर पीठ कर बैठते हैं। मन के अंधकार को मिटाए बगैर गन्तव्य के सूर्य तक पहुंचा नहीं जा सकता। चित्त की निर्मलता ही चैतन्य-सूर्य की ओर हमें ले जाएगी, हमें आत्मवान् बनाएगी। हम सदाचार और सद्विचार की ओर प्रेरित हों। चित्त के परिमार्जन के लिए चित्त को निर्भार और निर्मल करने के लिए पहला सूत्र यह है कि जिन-जिन के प्रति अपने मन में द्वेष है, उन-उन के प्रति प्रेम और क्षमा लाएं। इसके लिए संवत्सरी तक की प्रतीक्षा न करें। झट-से उस व्यक्ति से क्षमा मांग लें, 'सॉरी' कह दें। 'सॉरी' कहना क्रोध का प्रायश्चित्त करना है, द्वेष की ग्रंथियों को निर्मित न होने देना है।

जिस बाहुबलि ने बारह वर्ष तक जंगलों में खड़े रहकर तपस्या की थी, मगर फिर भी उन्हें कैवल्य न मिला। ब्राह्मी और सुंदरी नामक बहिनों ने बाहुबलि के पास जाकर कहा कि 'हाथी पर चढ़े रहने से कभी कैवल्य नहीं मिलता।' मुझे लगता है हर आदमी की यही दशा है। कोई आदमी क्रोध के दावानल में सुलग रहा है, कोई माया के कीचड़ में धंसा हुआ है; कोई अहंकार

के हाथी पर चढ़ा हुआ है, तो कोई लोभ की कब्ज से ग्रसित है। हर आदमी बीमार है, हर आदमी अस्वस्थ है। अच्छा होगा, शीघ्रतर इन सबकी औषधि ढूंढ़ी जाए और प्रेम-क्षमा के विस्तार के इन कंटक से वेगों से मुक्ति पाई जाए।

एक बार दो दोस्त रात को फिल्म देखकर अपने घर पहुंचे। घर बीस मंजिल से अधिक ऊंचाई पर था, उस पर उस दिन लिफ्ट खराब। जैसे-तैसे कर सीढ़ियों से अपने कमरे तक पहुंचे। कमरे का ताला खोलने के लिए जैसे ही हाथ जेब में डाला, तो याद आया कि चाबी तो स्कूटर की डिकी में ही है। तब उनकी हालत देखने लायक थी। आदमी कितना ही ऊपर चढ़ जाए, मगर मूल कुंजी हाथ न लगे, तो वह सारी चढ़ाई निरर्थक है। भले ही आप 'वयोवृद्ध' कहलाने लग गये हों, लेकिन क्रोध न गिरा, विकार न हटा, अहंकार की ग्रंथि आंशिक भी विखंडित न हुई, तो आपका अब तक का आचार-विचार बेकार रहा। हम कुछ-न-कुछ नया सृजन करके जाएं, तभी जीने में सार्थकता है।

हमारे चित्त में बहुत सारी गांठें पड़ी हुई हैं, बहुत सारी चिंगारियां दबी पड़ी हैं, इसलिए अच्छा होगा व्यक्ति सारे जगत के प्रति मैत्री का भाव लाए। मैक्यावली का मत था कि तुम अपने मित्र के साथ भी वैसा ही व्यवहार करो, जैसा कि तुम अपने शत्रु के साथ करते हो। इसके विपरीत महावीर कहते हैं कि तुम अपने शत्रु के साथ भी मित्र-सा व्यवहार करो। अगर तुम मैक्यावली के मार्ग से आगे बढ़ते हो, तो सारा जगत तुम्हारा शत्रु बन जाएगा और महावीर के रास्ते से गये तो सारा जगत तुम्हारा मित्र बन जाएगा। प्रभु करे हमारे प्रेम और मैत्री का विस्तार हो, जीवमात्र के प्रति हमारी मैत्री बढ़ती चली जाए।

चित्त-शुद्धि के लिए दूसरा सूत्र यह है कि जहां पर हमारे चित्त में काम की वासना उठती है, वहां काम की जगह राम को ले आएं, नर की जगह नारायण को स्थापित कर दें। मनुष्य के मन के मूलतः दो संवेग हैं—काम और क्रोध। काम का संबंध स्वयं से और स्वयं की आपूर्ति से है। जिस आदमी ने अपने जीवन में कंचन और कामिनी को जीत लिया, वह जीता जागता परमेश्वर है। ऐसा व्यक्ति प्रणम्य है।

मन में अगर विकार उत्पन्न हो जाए, तो वहां नारायण ले आएं; वहां मां सीता और मां पद्मावती को ले आएं। मन विकृत होते ही वहां से ऊपर उठा लें, मन पूर्ववत् निर्मल हो जाएगा। स्थूलिभद्र जैसे संत-पुरुष तो वेश्या के यहां भी चातुर्मास करते थे। वे चातुर्मास के लिए कोई उपाश्रय या स्थानक ही नहीं तलाशते। आदमी की असली परीक्षा मंदिर, उपाश्रय या हिमालय की कंदरा में संभव नहीं, वह तो वेश्यालय में ही मुमकिन है। आम आदमी भीड़ से बचकर भले गुफाओं में भी चला जाए, लेकिन मन के विचार और विकार वहां भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। वे तो वहां भी चले आएंगे। इसलिए कहीं जाने की मत सोचो, वरन् अपने आपको बदलने की सोचो।

चित्त-शुद्धि का तीसरा सूत्र है—आपके मन में जो भी अवगुण हैं, उनका चिंतन न करें, वरन् हम अपने आप में ज्यादा से ज्यादा गुण कैसे ला पाएं, यह बात सदा मनन करनी चाहिए। अच्छे कार्यों को करें, अवगुण स्वतः कम होते चले जाएंगे। ज्यों-ज्यों प्रकाश होगा, त्यों-त्यों अंधेरा हटता जाएगा। बस, जरूरत है मात्र एक चिराग की, एक दीये की। उसकी ज्योतिर्मयता की।

द्वेष की बजाय प्रेम, विकृति की बजाय पवित्रता और दोष-दर्शन की बजाय गुणवत्ता में वृद्धि, गुणग्राही दृष्टि, ये तीन सूत्र हैं, साधन हैं, चित्त की शुद्धि के, व्यवहार की शुद्धि के, जीवन की शुद्धि के। ये रत्नत्रय हैं जीवन के हर जीवन-पथिक के।

आत्मबल उसका निरंतर बढ़ता रहता है—जिसके पास पांच बल होते हैं-

1. अध्यात्मबल 2. मनोबल 3. चरित्रबल 4. संघबल 5. मंत्रबल

श्रावक कैसा? जिनदत्त जैसा

समणी विपुलप्रज्ञा

अमीर घराने में जन्मा सुव्रत नामक एक लड़का था। अपार सम्पदा उसके चारों ओर मंडराती रहती थी। उसको अपने युग की हर सुख-सुविधा उपलब्ध थी। पूरे लाड-प्यार से पाला-पोसा गया था। आए दिन घर में नाना प्रकार के पकवान बनते थे। केसरिया मोदक भी उसके घर में बनते ही रहते थे, जो उस जमाने में सबसे उत्तम मिष्टान्न माना जाता था। सुव्रत की सर्वप्रिय यदि कोई मिठाई थी तो केसरिया मोदक ही थे। जब भी वह चाहता केसरिया मोदक उसके लिये तत्काल तैयार हो जाते।

ज्यों-ज्यों समय बीता, अवस्था प्राप्त की, शिक्षा पाई, अनुभव पके, वह प्रबुद्ध होता गया। बाह्य वस्तु के प्रति उसका शोक कम होता गया। उसे लगा, यह भरपूर और भौतिक वातावरण मानसिक शांति प्रदान नहीं कर सकते। उसके भीतर एक अज्ञात-सी छटपटाहट और अकुलाहट रहने लगी, कि ऐसा कौन-सा पथ है जो मुझे आंतरिक शांति प्रदान कर सके, जो बाह्य जगत से सर्वथा निरपेक्ष और चिरस्थायी हो।

सौभाग्य से उसे जैनाचार्य शुभंकर का योग मिला। उनके ओजस्वी और मार्मिक प्रवचनों ने उसके अन्तर को झकझोर दिया। प्रज्ञा जाग उठी। भौतिक पदार्थों के प्रति उसकी आसक्ति क्रमशः क्षीण होती गयी। भीतर में वैराग्य के अंकुर फूटने लगे। आध्यात्मिक वातावरण, पुनः पुनः मुनियों का संपर्क, अनुकूल प्रशिक्षण, तत्त्व ज्ञान आदि का सुयोग पाकर उसके सत्संस्कार प्रबल हो उठे। वासनाओं, कामनाओं और कल्पनाओं की अगनित ऊर्मियों से उर्मिल जीवन-सरिता का प्रवाह एकाएक मुड़ गया। अठारह वर्ष की तरुण अवस्था में वह उन्हीं आचार्य शुभंकर के चरणों में जैन मुनि बन गया।

अब सुव्रत मुनि ध्यान, स्वाध्याय और श्रुताभ्यास के सहारे पल-पल सफल बनाने लगे। उनकी जीवन बगिया में समता, ऋजुता, मृदुता, विनम्रता, सहिष्णुता आदि गुणों के रंग-बिरंगे फूल खिलने लगे। उनकी अप्रमत्त साधना चिर प्रव्रजित मुनियों के लिए भी प्रेरक बन रही थी। अपनी प्रखर प्रतिभा और आशुग्राही मेधा के कारण थोड़े दिनों में आगम ग्रंथों का भी उन्होंने अच्छा अभ्यास कर लिया था। ऐसे सुयोग्य शिष्य को पाकर आचार्य शुभंकर भी अपने आप में धन्यता और निश्चिंतता का अनुभव कर रहे थे।

एक बार आचार्यश्री का वृहद् शिष्य परिवार के साथ धनकुंबेरों की नगरी राजगृहों में समागम हुआ। उस समय राजगृह जैन धर्म का केंद्र बना हुआ था। हजारों जैन परिवार वहां रहते थे और नगर भर की हर प्रवृत्ति में उनका पूरा प्रभाव था। फिर भी आश्चर्य की बात थी कि एक प्रभावक जैनाचार्य के शुभ आगमन के अवसर पर भी नगर में कोई चहल-पहल नहीं हुई। आचार्यश्री के सामने जाना, प्रवचन सुनना तो दूर रहा, श्रावक-श्राविकाओं ने दर्शन भी नहीं किए। राजगृह के प्रमुख श्रावकों की यह उदासी, यह उपेक्षा मुनिजनों को बहुत अखरी। राजगृह जैसे धर्म-धुरीण क्षेत्र में भी यदि इस प्रकार 'सोयी-गंगा' बहने लगेगी तो अन्य क्षेत्रों से तो आशा ही क्या की जा सकती है! पल-पल प्रज्वलित होने वाली धार्मिक चेतना की लौ एकाएक कैसे बुझ गयी, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आचार्य प्रवर को आये घंटों बीत गये हैं, पर किसी श्रावक ने आकर सुध तक नहीं ली। दिन के दो प्रहर बीतने को हैं। आचार्यश्री ने कहा–'आयुष्मन् संतो! श्रावक आखिर गृहस्थ हैं। किसी कारण वश नहीं आ सके होंगे। साधु और श्रावकों का गहरा सम्बन्ध होता है। वे नहीं आए तो क्या हुआ, तुम लोग घर-घर जाकर उनको दर्शन दे आओ।'

मुनिजन गुरु की अनुज्ञा पाकर जाने को उद्यत हुए ही थे कि इतने में 'वन्दे गुरुवरम्' कहते हुए एक श्रावक मण्डली ने प्रवेश किया। मुनियों के मीठे उपालंभ से उन्हें अपने प्रमाद का एहसास हुआ। अत्यंत विनम्रता से अपनी भूल के लिये क्षमायाचना करते हुए उन्होंने कहा–'गुरुदेव! आज हमारे यहां मोदकोत्सव है। आज के दिन सभी परिवारों में मोदक ही बनते हैं, अन्य कुछ भी नहीं बनता। आज हम लोग मुंह अंधेरे ही उठकर मोदकों की तैयारी में लग गए थे। अब कार्य से निवृत्त हुए हैं। इसलिये हम अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर सके, इसका हमें बहुत खेद है।'

तब सुव्रत मुनि ने पूछा–'मोदक किस चीज के बनाते हो?' श्रावकों ने कहा–'अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार नाना प्रकार के लड्डू बनाते हैं। कहीं साधारण तो कहीं विशिष्ट।'

मुनि–'विशिष्ट मोदक यहां कौन-से गिने जाते हैं?'

श्रावक–'मुनिश्री! हमारे यहां केसरिया मोदक महत्त्वपूर्ण गिने जाते हैं। वे बहुत महंगे पड़ते हैं, अतः संपन्न घरों में ही बन सकते हैं। वैसे राजगृह में तो संपन्न परिवारों की कमी नहीं है। यहां तो आज अनेक घरों में केसरिया मोदक बने हैं।'

केसरिया मोदक का नाम सुनते ही सुव्रत मुनि के मुंह में पानी भर आया; क्योंकि गृहस्थ अवस्था में उन्हें वे बहुत पसंद थे। मन के किसी कोने में दबी वासना की नागिन फुफकारने लगी। केसरिया मोदक खाने को वह आतुर हो गये।

आचार्य सहित सभी मुनियों ने सोचा, आज घर-घर एक ही भोजन है–लड्डुओं का। लड्डू स्वभाव से ही गरिष्ठ होते हैं। उनका पाचन क्रिया व स्वास्थ्य पर तो विपरीत प्रभाव होगा ही, स्वाध्याय-ध्यान में भी विघ्न उपस्थित होगा। अच्छा हो आज उपवास कर लें। सबने उपवास का निर्णय ले लिया।

सुव्रत मुनि ने उपवास नहीं किया। सोचा, अच्छा हुआ सबने उपवास कर लिया। अकेला हूं आहार करने वाला। मनचाहे केसरिया मोदक लाऊंगा और जीभर कर खाऊंगा। भिक्षा के लिये मैं स्वयं जाऊंगा। क्या पता दूसरे मुनि पर्याप्त मोदक लाकर दें या न दें। गुरुवर से निवेदन किया–'आज सभी मुनि उपवासी हैं। धूप भी चढ़ आयी है। मैं ही तो अकेला आहार करने वाला हूं, कृपया भिक्षा के लिये मुझे ही भेजिये।' अनुज्ञा पाकर मुनिजी ने खुशी-खुशी झोली पात्र सम्हाले और चल पड़े भिक्षा के लिए। केसरिया मोदक की चाह पल-पल तीव्र हो रही थी। ऊंची-ऊंची इमारतें देखकर वह कई जैन परिवारों में गये। त्योंहार के दिन संयमी साधु को अपने आंगन में आए देखकर श्रावक-श्राविकाएं पुलक उठीं। इस मंगल वेला में लोकोत्तम मंगलकारक मुनिश्री को पाकर उन्होंने अपने भाग्य को पुनः-पुनः सराहा। मुनिवर ने देखा–'मोदक तो बहुत हैं, उत्कृष्ट भावना से श्रावक दान देने को उत्सुक भी हैं; लेकिन केसरिया मोदक तो

इनमें नहीं दीख रहे हैं। वह बिना लिए वापस मुड़ गये। श्रावक भाव-भीनी प्रार्थना करते रहे।

मुनि क्रमशः कई छोटे-बड़े घरों में गए, पर मन चाहे मोदक नहीं मिले। जैन मुनि की भिक्षा-विधि भी कठोर होती है। कहीं अपेक्षित वस्तु उपलब्ध होते हुए भी वैधानिक कठिनाइयों के कारण जैन मुनि उन्हें स्वीकार नहीं करते। कई घरों में केसरिया मोदक तो थे लेकिन वे अन्य सचित वस्तुओं से लगे हुए थे। कहीं सब्जी छू रही थी तो कहीं पानी छू रहा था। किसी के कपाट बंद थे तो कहीं विधियुक्त देने वाला कोई नहीं था। कहीं लड्डू एकदम शुद्ध और एषणीय थे, दाता भी देने की स्थिति में था; मुनि ने लेने के लिए पात्र भी प्रस्तुत कर दिया, लेकिन बच्चे ने अचानक कच्चे जल के छींटे लगा दिये, लेना अविहित हो गया।

मुनि की आतुरता बढ़ती जा रही थी। एक-एक घर छान लिया परंतु इच्छा पूरी न हुई। वासना की सरिता पूरे वेग से बही जा रही थी। वह मानसिक संतुलन और स्वनियंत्रण के तटों को तोड़ चुकी थी। वे स्वयं को भूल गए, साधुत्व को भूल गए और अपनी सीमा को भी भूल गए। उन्हें अपनी जरा भी सुध नहीं रही। विवेक समाप्त हो गया। चिंतन-शक्ति क्षीण हो गई। पागल की तरह दिनभर इधर-उधर भटकते रहे। न कुछ खाया, न पीया। केसरिया मोदक के अतिरिक्त उन्हें कुछ सूझ भी तो नहीं रहा था।

चाहे जिस घर में चले जाते। बहनें कहतीं– मुनिजी! आज मोदकोत्सव है। मोदक लेकर हमें कृतार्थ करें। सहसा मुनि के मुंह से निकल जाता–'क्या केसरिया मोदक हैं?' बेचारी बहनें सकुचाती हुई कहतीं–'नहीं मुनिश्री! हमारे तो दाल के ही लड्डू बने हैं।' मुनि उपेक्षा भरी दृष्टि पसारते हुए बिना कुछ लिए ही लौट जाते। जैन जैनेतर सभी कुलीन बस्तियों में घूम लेने के पश्चात् उसी बेसुध अवस्था में अन्यान्य वर्गों के मुहल्लों में पहुंच गए। 'केसरिया मोदक, केसरिया मोदक की रटन लगाते हुए इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। लोगों को एक तमाशा मिल गया। भारी भीड़ इकट्ठी हो गई। पागल समझकर अज्ञानी लोग उन्हें तंग करने लगे। बच्चे भी ढेले-पत्थर मारकर सताने लगे।

सांझ उतर आयी। क्रमशः रात गहराने लगी। मुनि आसक्ति के भंवर में गहरे फंस चुके थे। हरिजनों, चमारों आदि की बस्तियों में भटक लेने के पश्चात् संयोगवश वे पुनः शहर की ओर मुड़ गए, गलियों-बाजारों में घूमते-घूमते वे 'जिनभद्र' श्रमणोपासक के मकान के आगे से गुजरे। केसरिया मोदक, केसरिया मोदक चिल्ला रहे थे। अर्धरात्रि में एक अजनबी व्यक्ति को देखकर कुत्ते भौंकने लगे। श्रावक जिनभद्र की नींद टूटी। 'केसरिया मोदक' केसरिया मोदक शब्द सुनायी दिये। उसने सोचा, ये शब्द परिचित से लगते हैं। अरे, दिन में एक मुनिजी आए थे ना! लगता था उन्हें केसरिया मोदक की अपेक्षा थी। उस समय मेरा रसोई घर बंद था। मैं दान नहीं दे सका। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ हो कि उनको कहीं वे मोदक न मिले हों। छद्मस्थता और साधना की अपरिपक्वता की स्थिति में उनके मन पर अप्रिय असर हुआ हो और वे अपना संतुलन खो बैठे हों?

जिनभद्र ने दरवाजा खोला। देखा तो वही छोटे मुनि हैं। उक्त रटन लगाते इधर-उधर घूम रहे हैं। उसके मन में करुणा के भाव उमड़ पड़े। ये नवदीक्षित मुनि हैं। हो सकता है बचपन की स्मृतियां उभर आयी हों। वैसे जैन मुनि बहुत अनासक्त और विरक्त होते हैं। इनकी निस्संगता और इंद्रिय-विजय की साधना अध्यात्म-जगत का उत्कृष्ट उदाहरण है। फिर भी मानवीय दुर्बलताओं के रहते व्यक्ति कभी भटक भी तो सकता है। लेकिन भटके हुए को सही राह पर ले आना, गिरते को हाथ का सहारा देकर उबार लेना, डूबते हुए को किनारे लगा देना–यही तो इंसान का कर्तव्य होता है। मुझे लगता है इनकी यह तीव्र चाह जब तक पूरी नहीं होगी, इनका मन स्वस्थ नहीं हो सकेगा। क्यों न मैं ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रयोग करूं, जिससे इनकी चेतना के तार पुनः झनझना उठें। सोया विवेक जाग उठे।

मुनिजी को सविध वंदन करते हुए जिनभद्र श्रावक ने निवेदन किया–'पधारिए! पधारिए, मुनिवर! अपने

साधनापूत चरण स्पर्श से इस कुटिया को पावन कीजिए। सौभाग्य से उत्सव के दिन आपका शुभागमन हुआ है। अब सुपात्र दान का अवसर देकर मुझे कृतार्थ करें। पर मुनि को तो एक ही धुन थी। कातर नयनों से देखते हुए धीमे से पूछा–'केसरिया मोदक हैं?'

श्रावक 'हां-हां बहुत हैं केसरिया मोदक; कृपा कर भीतर आइये।' केसरिया मोदकों से भरे बड़े-बड़े बर्तनों को देखकर मानो उनके जी में जी आ गया। झोली से पात्र निकाला। श्रावकजी ने अत्यन्त प्रसन्नता से पूरा पात्र भार दिया केसरिया मोदकों से। लड्डू पाते ही मुनि का चेहरा चमक उठा। आंखें खिल उठीं। खुशी-खुशी वापस मुड़े। द्वार से निकलते ही श्रावकजी ने पूछा– 'मुनिश्री! समय क्या हुआ है?' मुनि ने आकाश की ओर निहारा (क्योंकि घड़ी का आविष्कार उस समय तक हुआ नहीं था। सूर्य, चन्द्र और तारों की छाया और गति के आधार पर ही लोग काल-ज्ञान करते थे) मुनि स्तब्ध रह गया। धरती मानो उनके पावों से खिसकने लगी। अरे! दिन कहां है? यह तो तारों भरी रात है। वह भी ठीक मध्यरात्री। वह सकपका गए। बोले– 'श्रावकजी! यह क्या हो गया? रात्री में यहां कैसे आ गया । मैं साधु हूं। रात्री में भिक्षा करना मेरे लिए सर्वथा अकल्प्य है। मुझे क्या हो गया? कहां भटक गया?' कहते-कहते उनका गला रुंध गया। शरीर कांपने लगा। मुंह पीला पड़ गया।

श्रावक ने सोचा, रेल पटरी पर आ गई है। अब तो मात्र गति देना अपेक्षित है जो कि अतीव सुसाध्य है। वह आत्मीयता के स्वर में बोला–'मुनिश्री! आप घबराइए मत! आपने जान-बूझकर तो ऐसा किया नहीं है। प्रबल मोहोदय के क्षणों में चेतना आवृत हो जाती है। व्यक्ति मूढ़ बन जाता है। वैसी स्थिति में व्यक्ति कब क्या कर गुजरता है, कुछ पता नहीं चलता। आप छद्मस्थ हैं और नए-नए प्रव्रजित भी। ऐसी स्थिति में भूल हो जाना कौनसी बड़ी बात है? आखिर भूल किससे नहीं होती। चार ज्ञान और चौदह पूर्वों के धारी मुनि भी तो कभी स्खलित हो सकते हैं। फिर आप और हम किस बाग की मूली हैं? दूसरी बात यह है कि भगवान महावीर ने स्खलना का प्रतिकार भी तो बताया है। आप प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो सकते हैं। अब बीती बात बिसारिए, आगे की सुधि लेही। कहिए अब आप क्या चाहते हैं?'

मुनि–'श्रावकजी! जो आप सुझाएं! बस, मुझे चिंता यही है कि मैं पुनः कहीं भटक न जाऊं?'

श्रावक–'नहीं, नहीं, वह तो आप चिंता ही मत कीजिए। देखिए, आप यदि रात-रात यहीं रहना चाहें तो मेरा उपासना कक्ष प्रस्तुत है। मैं रात भर आपकी उपासना करूंगा और सूर्योदय होते ही अच्छी तरह आपके स्थान पर पहुंचा दूंगा। यदि आप अभी जाना चाहें तो वैसी व्यवस्था कर दूं।'

मुनि ने रात-रात वहीं रहना उचित समझा। लड्डुओं की झोली एक ओर रख दी और स्वयं जिनभद्र के उपासना कक्ष में ध्यानलीन बन गए। चिंतन की धारा मुड़ी। पौद्गलिक वस्तुओं की आपात-स्मरणीयता और परिणाम-विरसता की तीव्रता से अनुभूति होने लगी। अपनी रस-लोलुपता को याद कर उनका मन ग्लानि और अनुताप से भर गया। सोचा–'सुव्रत! किधर भटक गया? शुद्ध आत्मतत्त्व को पाने के लिए घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, घर-बार छोड़ा, सब प्रकार की सुविधाओं का त्याग किया। इच्छाओं का बलिदान किया, स्वत्व को लुटाया, साधना की कांटों-भरी राह अपनायी और आज इस छोटी-सी वस्तु में मन भटक गया। वासना के झीने से तार में उलझ गया। आज तक तूने कितने कितने रस चखे हैं, पर क्या हुआ? तृप्ति न मिली। सचमुच यह पौद्गलिक जगत छलावा और भुलावा है। अतः, इससे सदा निरपेक्ष रहना चाहिए।

सुव्रत! तेरा लक्ष्य कितना ऊंचा है। मंजिल अभी बहुत दूर है। ये बाहरी आकर्षण तुझे वहां तक कभी नहीं पहुंचने देंगे। अतः संभल!

चेतन! तू अध्यात्म रस में डूबकी लगा। वही परम रस है। उसके सामने दुनिया भर के सारे रस नीरस हैं। इस प्रकार चिंतन की गहराई में उतरते-उतरते चेतना की

आवरण शक्ति क्षीण हो गई। भाव-विशुद्धि के कारण उनकी आत्मा विकास की चरम ऊंचाई को छूने लगी। ज्ञानसूर्य की प्रखर रश्मियां चारों ओर छितरने लगीं। सूर्योदय होते-होते सुव्रत मुनि के अंतर में छिपा अनंत ज्ञान का सूर्य प्रकाशित हो उठा। वे केवली बन गए। सर्वज्ञ बन गये। अर्हत् बन गये।

सुश्रावक जिनभद्र ने तत्काल आचार्य शुभंकर को यह सुखद सूचना दी। गुरुजी अपने शिष्य परिवार को साथ ले अपने वीतराग शिष्य का स्वागत करने चले। इधर सर्वज्ञ मुनि सुव्रत ने भी गुरुवर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में ही मधुर मिलन हो गया। सहज ही परिषद् जुड़ गयी। सुव्रत मुनि ने सुश्रावक जिनभद्र के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा–'आज मुझे यदि इनका योग न मिलता तो न जाने मेरी क्या गति होती! मेरी संयम की नौका भयंकर आवर्त में फंस चुकी थी, जिसे उफनती हुई सागर की लहरें लीलने को आतुर हो रही थीं। उस समय यदि ये उपदेश देने लगते, मेरी रसासक्ति की भर्त्सना करते, आक्रोश करते, मुझे उपेक्षा और घृणाभरी निगाहों से घूरते, अपने द्वार पर एक भिखारी की तरह केसरिया मोदक की भीख मांगते देखकर मुझे दुत्कारते तो निश्चित ही वैषयिक जगत के सामने मेरी घोर पराजय होती। मेरी जीवन नैया वासना के सागर में इस कदर समा जाती, कि उसका अता-पता लगाना भी मुश्किल हो जाता। लेकिन गुरुवर के पुण्य प्रताप से श्रमणोपासक जिनभद्र ने मुझे गले लगा लिया। मेरे अपराधों को आंखों से ओझल कर मुझे अपना हृदय दे दिया। यह परम उपासक हाथ का सहारा देकर मेरी डूबती हुई नैया को किनारे पर ले आया। सचमुच ऐसे धीर-गंभीर श्रावक ही वस्तुतः साधु-साध्वियों के माता पिता कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। ❑

घर–परिवार और मित्र–परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर **'जैन भारती'** उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक–नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म–दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, **'जैन भारती'** अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती

एक संपूर्ण पत्रिका है।

वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए

जैन भारती

पढ़ें–सबको पढ़ाएं.

व्यवस्थापक

जैन भारती

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

सातों सुखों की खोज

आरती जैन, खुशबू जैन

मन में सबसे पहले प्रश्न उभरता है कि सुख क्या है? वह क्या है जो व्यक्ति को सुखी बनाता है? सुख की कोई सर्वसम्मत, सर्वस्वीकृत परिभाषा कर पाना बहुत कठिन है। यूं तो एक उत्तर यह हो सकता है कि दुःख का अभाव ही सुख है, पर क्या सचमुच दुःख का अभाव ही सुख है। फिर दुःख किसे कहा जाए? कई लोग हैं, जो दुःख को ही पसंद करते हैं, उसे ही चाहते हैं। महाभारत का प्रसंग है, कुन्ती ने श्रीकृष्ण से दुःख ही मांगा था, क्योंकि दुःख होगा तो गोविन्द की याद बनी रहेगी। लेकिन बात सुख की ही हो रही है। इसलिए हमें हमारे पूर्वजों द्वारा बताए गए उन सात सुखों पर चिंतन-मनन करना है जो सुख के नए रास्ते खोलते हैं और जीने की नई सोच पैदा करते हैं।

पहला द्वार है–परिवार का आरोग्य

हर किसी की कामना होती है कि उसका परिवार सुखी हो। परिवार के सभी सदस्य स्वस्थ हों। प्राचीनकाल से स्वीकृत लोकोक्ति है–पहला सुख निरोगी काया। परिवार के सुखी और समृद्ध रहने की पहली शर्त है–'परिवार का आरोग्य।' ज्ञान प्राप्ति भी स्वस्थ रहने पर ही हो सकती है। बुद्धि की स्फुरणा तभी होती है जब शरीर स्वस्थ और चित्त प्रसन्न रहे।

स्वास्थ्य जीवन की ऊर्जा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रधान आधार आरोग्य ही है। जो व्यक्ति तन-मन से स्वस्थ होता है वह हर क्षण आनंद ही आनंद की अनुभूति करता है। आज तनावपूर्ण जीवन शुभ और विश्राम की उपेक्षा तथा अनियमित जीवनशैली के कारण मोटापा, रक्तचाप, हृदयरोग, मधुमेह, श्वास रोग जैसे नए-नए असाध्य रोगों का प्रादुर्भाव हो रहा है। आवेश आदि को नियंत्रित कर ही हम सही अर्थों में आरोग्य को प्राप्त कर सकते हैं। आरोग्य के लिए आवश्यक है–ध्यान, आसन, प्राणायाम, उपवास, प्राकृतिक चिकित्सा, प्रातः भ्रमण, सकारात्मक सोच, मंत्रोपासना आदि।

खाद्य संयम अत्यंत आवश्यक है। भोजन आवश्यक है पर भोजन में मात्रा का ज्ञान होना भी जरूरी है। आज 'फास्ट-फूड' संस्कृति का बढ़ता प्रभाव, खाद्य-संयम की मर्यादाएं निरंतर भंग कर रहा है। जब भोजन असंतुलित होता है तो आदतें बिगड़ जाती हैं। पोषक तत्त्वों का संतुलन नहीं होता तो स्वभाव बदल जाता है।

दूसरा द्वार है–घर में माया

गरीबी जीवन का सबसे बड़ा उपहास है। आवश्यकता से अधिक धन जहां जीवन में कुरीतियां प्रकट करता है वहीं उसका अभाव विकट परिस्थितियां पैदा करता है। हमारे आपके साधन कुछ भी हों, चाहे व्यापार करते हैं, चाहे नौकरी करते हैं या अन्य कोई व्यवसाय करते हैं, अपनी चादर के अनुसार ही पैर फैलाने से हम अनावश्यक अर्थ संकट से बच सकते हैं। हमारा बजट संतुलित हो। आय के स्रोत नैतिक होंगे तो बिना किसी भय के हम जीवन-यापन कर सकेंगे। अनैतिक साधनों से प्राप्त संपदा के कारण परिवार में हर समय अनावश्यक भय समाया रहता है। अतः अपने साधनों को प्रामाणिक रखना आवश्यक है। समय-प्रबंधन, कैरिअर के प्रति सतर्कता, खर्च पर नियंत्रण एवं खरीदारी की कला द्वारा भी हम अपना बजट संतुलित रख सकते हैं।

समय को व्यर्थ गंवाने वाले जीवन की अमूल्य पूंजी का अपव्यय करते हैं। समय को देखकर चलने

वाले व्यक्ति स्वयं का, समाज और राष्ट्र का हित साध सकते हैं। समय के प्रतिकूल प्रभाव से वे निराश नहीं होते, अनुकूल समय की प्रतीक्षा करते हैं। समय उसी का साथ देता है जो प्रतिकूल हवाओं के सहारे आगे बढ़ता रहता है। समय की सार्थकता उसी व्यक्ति के लिए है जो समयज्ञ है। जीवन के प्रत्येक क्षण का रचनात्मक ढंग से नियोजन कर समय के कुशल-प्रबंधन की विधि अपनाए। स्वयं के लिए भी समय निकाले।

तीसरा द्वार है—पारिवारिक साया

नारी परिवार की आधारशिला है। परिवार का सौंदर्य, समृद्धि और गौरव उसी के कारण स्थिर रहता है। 'शीलव्रता नारी' घर की लक्ष्मी होती है। घर में समृद्धि का वास रहता है। नारी के अनेक रूप हैं—माता, पत्नी, बहन, बेटी आदि। वह हर रूप में पूजनीय है। नारी परामर्श में मंत्री, गृहकार्य में दासी, धर्म कार्य में पत्नी, सहिष्णुता में पृथ्वी, गृह-व्यवस्था में गृह की लक्ष्मी, ममता में माता, विलास में रम्भा, क्रीड़ा में मित्र की भूमिका निभाती है। नारी का एक महत्त्वपूर्ण रूप है शिक्षिका का, बच्चों को संस्कारी बनाने से लेकर परिवार के हर सदस्य को सद्मार्ग की ओर अग्रसर करने का दायित्व उसी पर है।

बालक के लिए मां जननी ही नहीं होती, अपितु देवता होती है, गुरु होती है और वह सब-कुछ होती है। आधुनिक माताओं का व्यवहार और स्वभाव दिन-प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। किटी पार्टी, क्लब, टेलीविजन में व्यस्त रहने के कारण वे प्रायः अपने बच्चों से दूर रहती हैं। जबकि मां का वात्सल्य ही बालक के जीवन-निर्माण का मूल आधार है। परिवार के निर्माण में पुरुष की अपेक्षा नारी का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है। परिवार की उन्नति के तीन सूत्र हैं—सहनशीलता, स्नेहशीलता और श्रमशीलता। एक सुघड़ गृहिणी की पहचान उसके घर की स्वच्छता तथा बच्चों की शालीनता से होती है।

स्त्री और पुरुष एक-दूसरे की अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। अतः आवश्यक है कि दोनों वर्ग सशक्त, तेजस्वी और एक-दूसरे के पूरक बनें। परिवार की श्री समृद्धि एवं सुख-शांति के लिए दंपती संयम, स्नेह और सहिष्णुता को जीवन में उतारें। आदर्श गृहिणी का कर्तव्य है कि वह सास, ससुर, देवरानी, जेठानी से तालमेल बनाए। बड़े-बुजुर्गों के सम्मान तथा छोटों पर स्नेह और आत्मीयता से गृहिणी घर को स्वर्ग बना देती है। पर आज इन सबकी परिभाषाएं ही गलत हैं। जब परिभाषाएं ही गलत होंगी तो ऐसी आशंकाएं बनी ही रहेंगी।

कल तक परिवार की परिभाषा अलग थी। फिर उसकी दो शाखाएं हो गयीं—'संयुक्त परिवार' और 'एकल परिवार।' परिवार भी खंड-खंड कर बांट दिया गया। जब हम 'संयुक्त परिवार' कहते हैं तो मान लेते हैं कि वह परिवार कई परिवारों का संयुक्त स्वरूप है। एक मानसिक विभाजन तो हमने कर ही लिया। पुराने जमाने में या आज से पचास वर्षों पूर्व ही परिवार में माता-पिता, विवाहित पुत्र, पुत्र-वधू, पौत्र-पौत्री, बहन सभी गिने जाते थे। आज यदि किसी परिवार में ये सब साथ भी रह रहे हों तो हम उन्हें 'एकल परिवार' नहीं, 'संयुक्त परिवार' कहते हैं। परिवार की एकता में सुख है, शांति है और समृद्धि भी, क्योंकि तब समृद्धि के लिए भौतिक आधार की जरूरत नहीं रहती।

व्यक्ति अपने वैयक्तिक स्वार्थों को ही सर्वोपरि समझ आत्मकेंद्रित हुआ जा रहा है। अब पत्नी और बच्चे भी पराये से होते जा रहे हैं। माता-पिता की बात तो दूर, समुदायों में आत्म केंद्रीयता उन सत्तालोलुप राजनेताओं की देन है, जो अपने 'वैयक्तिक स्वार्थ' पर 'समाज विशेष के हित और स्वार्थ' का मुलम्मा चढ़ाकर बाजार में उसे प्रतिष्ठित कर रहे हैं। कोई घटना, दुर्घटना, कोई कांड, चाहे भ्रष्टाचार का हो या सामूहिक हत्याओं का उनके लिए उस 'आग' से ज्यादा नहीं होता, जिस पर 'रोटी सेंकने' का उन्हें ईश्वर प्रदत्त अवसर मिल जाता है। ऐसे समाज में सुख-समृद्धि, शांति की आशा आकाश कुसुम ही लगती है। जब तक समाज समृद्ध नहीं होता, परिवार भी समृद्ध नहीं हो सकते और न व्यक्ति जो उसकी इकाई है।

वास्तविक सुख, समृद्धि और शांति के सूत्र तो हमें हर धर्मग्रंथ में मिलते हैं, पर हम केवल उनको पढ़ते हैं, गुनते नहीं। सच्ची नैतिकता की परिभाषा सर्वत्र एक सी है। सच्चे जीवन मूल्यों की मणियां हर धर्म में उपलब्ध हैं, पर आज हमने समय के दबाव में, फैशन में नये जीवन मूल्य अपना लिये हैं। अब हमें अपने धर्म, परंपरा प्रदत्त जीवन मूल्य पुराने, बेमानी, अनुपयोगी लगने लगे हैं और यही कारण है कि तमाम भौतिक समृद्धि होते हुए भी हम अशांत हैं, दुःखी हैं। शांति और सुख की तलाश में हैं। सच्चा सुख, सच्ची शांति, सच्ची समृद्धि चाहते हैं, तो अपने को दूर रखकर औरों से जुड़िए। एकल परिवार में हो तो अपने परिवार से जुड़िए। परिवार में हैं तो मुहल्ले से, समाज से और देश से, विश्व से जुड़िए। जैसे-जैसे आपकी दृष्टि विस्तार पाती जाएगी आप स्वयं को सबसे सुखी, सबसे शांत और समृद्ध महसूस करेंगे।

चौथा द्वार है–आज्ञाकारी पुत्र

हर घर की समस्या है कि नई पीढ़ी संस्कारी नहीं है। तरह-तरह की विसंगतियां एवं बुराइयां उनमें घर कर गई हैं। हर मां-बाप को अपने बच्चों के कॅरिअर को लेकर परेशान देखा जा सकता है। शादी होने के बाद हर घर में बाप और बेटे के बीच द्वंद्व बढ़ता है और एक घर में दीवारें खिंच जाती हैं। परिवार बिखर जाते हैं। इस दृष्टि से सातवां सुख इंसान के सफल और सार्थक जीवन का सबसे बड़ा सुख है। आज बच्चों के व्यक्तित्व को विकसित करने की, उनके व्यक्तित्व को निखारने की अनेक प्रयोगशालाएं खुली हैं। माता-पिता अपने बच्चों से उज्ज्वल व्यक्तित्व का सपना उनके बचपन में ही देखने लगते हैं।

जीवन अनंत संभावनाओं की कच्ची मिट्टी है। उसको वांछित मोड़ देकर ऊंचाइयों तक उठाना मनुष्य का काम है। प्रशस्त जीवन वह है जो शांत हो, संतुष्ट हो। चरित्र व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान और संपदा है। जब तक व्यक्ति का नैतिक और चारित्रिक विकास नहीं होगा, तब तक उसके स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण नहीं हो सकता। संकट, अभाव, असमानता, गरीबी और अशिक्षा के कारण श्रम और पुरुषार्थ का विवेक जागृत नहीं हो पाता। गलत धारणाओं के चलते व्यक्ति भाग्यवाद की ओर बढ़ता जा रहा है जो उसके व्यक्तित्व विकास के लिए धीमा जहर है। महत्त्वाकांक्षा और स्वप्नदर्शी होने को कभी बुरा नहीं कहा गया। किंतु निरर्थक महत्त्वाकांक्षा पालना पतन का सीधा रास्ता है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार ही हमारी आकांक्षा होनी चाहिए। संतोष, सादगी, विश्वास, चरित्र और नीति से भरा जीवन ही स्वर्गिक जीवन है। संपन्न और अनुशासन से ओत-प्रोत स्वस्थ एवं शांतिमय जीवन जीना ही जीवन की कला है।

पांचवां द्वार है–गुरु का साया

किसी भी साध्य के लिए किसी न किसी आलंबन की आवश्यकता रहती ही है। यह आलंबन गुरु हो सकता है। आपकी निष्ठा, क्षमता, श्रद्धा, विश्वास आपके जीवन में बड़े-से-बड़ा चमत्कार घटित कर सकता है।

आस्था के बिना पुरुषार्थ फलता नहीं और पुरुषार्थ के बिना आस्था स्थिर नहीं बनती। पुरुषार्थ को जगाने का पहला सूत्र है–आस्था। आस्था हृदय की पुण्य निधि है, वह सदा दृश्य नहीं होती, सहयोग मिलने पर ही वह साकार हो जाती है। आस्था सब देवों की शक्ति है। जो उसकी आराधना करता है, वह सब कुछ पा लेता है। आस्था एक संजीवनी शक्ति है। उसके प्रयोग से सफलता अवश्य ही अर्जित होती है।

उपासना के नाम पर दिन-प्रतिदिन कर्मकांड, हिंसा, धोखा, स्वार्थ पनपते जा रहे हैं। इनके चलते उपासना के सही रूप से अधिकांश लोग अनभिज्ञ हैं। उपासना को लोग चरित्र से अलग मानते हैं, जबकि उपासना जीवन का संस्कार है जिससे जीवनशैली का परिष्कार होता है और सोच में बदलाव आता है। आचार और विचार से शून्य उपासना प्रभावकारी नहीं होती। उपासना से शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य की ओर प्रेरित हों।

छठा द्वार है—सार्वजनिक प्रतिष्ठा

व्यक्ति की साफ-सुथरी छवि परिवार के लिए यशदायी होती है। सार्वजनिक जीवन का अपना ही अलग महत्त्व है। जब तक व्यक्ति में प्रामाणिकता, ईमानदारी, सचाई, सत्यनिष्ठा आदि गुण नहीं होंगे तब तक वह आदर्श नागरिक नहीं बन सकता। अधिकारों की मांग करना मौलिक कर्तव्य है किंतु नागरिक कर्तव्यों का पालन करना भी उतना ही आवश्यक है। आज सार्वजनिक जीवन में शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सौष्ठव एवं पारस्परिक सद्भाव के स्थान पर नागरिकों का रुझान राजनीति, चुनाव आदि में अधिक होने से व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति पर लक्ष्य अधिकं रहता है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने वाले लोग उतने भ्रष्टाचारी नहीं हैं जितने वे लोग हैं जो सुख-सुविधाओं को भोगने के लिए भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। यदि हम प्रशासनिक पद पर हैं तो हमें पूरी ईमानदारी से अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहना चाहिए। हमें अपने अधिकारों का पूरा ज्ञान तथा उनको प्राप्त करने के लिए सदैव जागरूक एवं संघर्षशील रहना है।

हमें देश, सरकार, कानून-व्यवस्था और राजनीति के प्रति भी जागरूक रहना है। बिना भय अनैतिकता के विरुद्ध अपना सोच प्रदर्शित करना है। सार्वजनिक प्रतिष्ठा के लिए जरूरी है—सामाजिक यश। समाज हमारे जीवन का वह स्तंभ है जो हमें स्थायित्व प्रदान करता है। समाज के अभाव में हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते, चाहे हम किसी समाज से हों। समाज के प्रति हमारा कर्तव्य है। हमें सामाजिक कल्याण के लिए, समाज के विकास के लिए आगे आना ही होगा। समाज में हमें नेतृत्व विकास का मौका मिलता है। कर्तव्य भावना, सेवा, परोपकार के गुण समाज से ही सीखने को मिलते हैं। व्यक्ति का सारा जीवन सापेक्ष होता है और वह सहकार-सहयोग पर ही टिका हुआ है। सेवा मानवीय मूल्यों की मिठास है। ऐसा सुवासित चंदन है जो सेवा करने वाले और सेवा लेने वाले, दोनों के जीवन को महकाता है।

परिवार, समाज, प्रांत और देश में आज नशे के कारण अपराध–हिंसा, बलात्कार आदि मनुष्य के नैतिक पतन की कहानी कह रहे हैं। नशा न केवल शरीर को प्रभावित करता है अपितु उसका दुष्प्रभाव मन और भावों तक पहुंच जाता है। अपराधों के पीछे मनुष्य की मानसिक विकृति का ही सबसे बड़ा हाथ होता है। इसी प्रकार दहेज, मृत्युभोज जैसी अनेकों कुरीतियां बड़े प्रबल रूप में प्रतिष्ठित हैं। सच्चे समाज सेवक का कर्तव्य है कि वह अपने समाज को इन कुरीतियों से मुक्त कराए।

सातवां द्वार है—व्यक्तित्व विकास

सफलता सबको चाहिए। वह हर व्यक्ति जो थोड़ा भी चिंतनशील है, जीवन में सफल होना चाहता है। सफलता की चाह के लिए व्यक्तित्व विकास बहुत जरूरी है। जरूरी हैं व्यक्तित्व इतना प्रभावी और आकर्षक बने कि बहुत शीघ्र वह लोगों पर छा जाए। आंतरिक व्यक्तित्व में गुणात्मक सुधार किये बिना व्यक्तित्व का कभी स्थायी प्रभाव नहीं हो सकता। इसके लिए टोटल क्वालिटी मैनेजमेंट का सिद्धांत अपनाना जरूरी है। इस सिद्धांत को अपनाने का अर्थ है अपने आदर्शों, मूल्यों, सिद्धांतों और लक्ष्यों के प्रति दृढ़ता एवं व्यवहार में मृदुता और समरसता का भाव। गुणात्मकता और समरसता ही जीवन की सुवास है। यह जितनी बढ़े, गढ़े और फैले इसी में जीवन का महत्त्व है।

बाह्य व्यक्तित्व के साथ-साथ अंतरंग व्यक्तित्व का विकास ज्यादा अपेक्षित और महत्त्वपूर्ण है। अंतरंग व्यक्तित्व के विकास का अर्थ है जीवन में आने वाले अच्छे-बुरे दिनों एवं कठिन घड़ियों में धीरज न खोना और मानसिक संतुलन बनाये रखते हुए शांति से समाधान खोजने की कला हासिल करना।

कष्टकारी स्थितियों में तितिक्षा (सहिष्णुता) बनाए रखना, विभिन्न प्रकृति वाले लोगों के बीच रहकर एडजस्टमेंट करना और संयोग-वियोग की स्थितियों में मनोबल कायम रखते हुए उन्हें झेल जाना एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को सहजता से स्वीकार कर प्रसन्नता बनाए रखना, यही वे महत्त्वपूर्ण घटक हैं जो हमारे व्यक्तित्व को तेजस्वी बनाते हैं और उसे एक सुघड़ता प्रदान करते हैं। ❑

इंतजार

घड़ी **WATCH** देखना

चौकीदारी

WATCH

चम्पालाल बोथरा

WATCH एक ऐसा शब्द है जो कि इस संसार के प्राणी मात्र को सुख, शांति एवं वैभव प्रदान कर सकता है अगर इस शब्द के प्रति हम निष्ठाशील बनकर इसको अपने जीवन में प्रतिक्षण जीते रहें। मैं अपने जीवन के दीर्घ अनुभव से यह कह सकता हूं कि इस मानव जीवन में हमें जो चाहिए, वो सब मिल सकता है। अगर किसी प्राणी को पूछें कि तुमको क्या चाहिए? तो शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति मिलेगा, जिसको इन तीन वस्तुओं की चाह न हो।

चिंतन करें कि बिना किसी कीमत के अगर सबकुछ मिल सकता है तो इससे अधिक और क्या चाहिए। किसी व्यक्ति के पास सुख, शांति एवं वैभव हो तो मैं सौचता हूं कि दुःख-दरिद्रता तो उसके स्वप्न में भी नहीं आ सकेगी। केवल इस शब्द को आपको अपनी सांसों के साथ जोड़ना होगा एवं इस शब्द का पूरा अर्थ समझना होगा।

- **WATCH पहला–हिन्दी अनुवाद होगा 'घड़ी', जो हमें समय की गति का अनुभव कराती है।**
- **WATCH दूसरा–हिन्दी अनुवाद होगा 'इंतजार', यानी समय की प्रतीक्षा करें।**
- **WATCH तीसरा–हिन्दी अनुवाद होगा 'देखना' यानी हरपल हरक्षण जागरूक रहना।**
- **WATCH चौथा–हिन्दी अनुवाद होगा 'रखवाली' करना।**

इन चारों अर्थों को सोच-समझकर अगर जीवन की यात्रा को गतिशीलता प्रदान की जाए तो वास्तव में सुख, शांति व वैभव संपन्नता हासिल हो सकती है।

1. WATCH–समय–इस जीवन में अनमोल वस्तु कुछ है तो वो समय ही है। समय किसी का इंतजार नहीं करता। वह प्रतिक्षण सृष्टि को गति (ज्ञान) प्रदान करता है और यह गति ही हमें जीवनयापन कराती है। इसलिए समय का सदुपयोग करना जीवन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। समय के सही उपयोग हेतु समयसारणी बनाना और उसका पालन करना भी वास्तविक ज्ञान, दर्शन, चरित्र–तीनों के संगम में स्नान करना होगा। समय की इस गति को रोकना असंभव है। वो प्रतिक्षण चलता रहता है। वह जाने के बाद कभी वापस लौटकर नहीं आता। चाहे कितनी ही कोशिश और प्रयत्न करें, इस अनमोल क्षण को वापस नहीं लाया जा सकता।

बाल्यावस्था जाने के बाद जवानी और जवानी के बाद वृद्धावस्था ही आयेगी। इस क्रमबद्धता पर किसी का वश नहीं चलता। जैसा कि ज्ञानियों ने कहा है–'बीता हुआ समय और बोला हुआ वचन वापस लौटकर कभी नहीं आता'। समय की गति को योजनाबद्ध किया जाये एवं समय का उपयोग अपनी पैनी नजर से जागरूकता के साथ करने वाला मनुष्य हमेशा सुख, शांति और समृद्धि प्राप्त करता है।

2. WATCH–इंतजार–इंतजार जो कि प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ है। इंतजार का फल मीठा होता है, क्योंकि इस जीवन में इंतजार एक ऐसा पर्यायवाची शब्द है जो हरपल हरक्षण हमारे जीवनयापन के साथ सुखों का आभास कराता रहता है। बिना इसके कुछ करना या होना असंभव है, क्योंकि यह शब्द सृष्टि के साथ जुड़ा हुआ है जो हमें प्रतिक्षण का अवलोकन कराता है और जीवन की वास्तविकता से ज्ञान कराता है। जैसे कोई बीज अंकुरित होता है, पौधा बनता है, उसके पत्ता आता है, उसके बाद फूल खिलता है और उसके बाद फल लगता है जो कि एक समय का इंतजार कराता है। इसीलिए कहा गया है कि 'माली सिंचे सौ घड़ा, ऋतु आयां फल होय'। इंतजार जीवन का मुख्य अंग होता है, जो मन में उम्मीद जगाए रखता है कुछ होने का, कुछ बनने का। हरपल इंतजार की प्रेरणा देता रहता है। इंतजार के साथ जुड़ा व्यक्ति कभी जीवन में निराश नहीं होता। उसे हमेशा रात नहीं, सूरज के आने की आश रहती है। यही विश्वास जीवन की सार्थकता में चार चांद लगा देता है।

3. WATCH–देखना–अगर आप किसी भी वस्तु के रंग-रूप को देखना-परखना सीख गये हों तो मानो जीवन की असली विद्या हासिल कर ली है और हरपल हरक्षण जागरूकतापूर्ण जीवन जीना आ गया है। आप अपने जीवन के किसी भी लक्ष्य को हासिल कर सकेंगे, इसी का नाम है सफल जीवन। जीवन की प्रथम भूमिका देखने से ही शुरू होती है। देखना यानी देखने के साथ मन एवं मस्तिष्क आगे की संरचना करने लग जाते हैं और सारी विकास यात्रा के लिए रास्ते खुल जाते हैं। अगर व्यक्ति देखते-देखते स्वयं को देखना सीख जाये तो उपलब्धियों का भंडार भर जाता है। फिर तो समझ लो कि दुनिया की सब शक्तियां मिल गईं। भीतर की आंख खुल सकती है। किसी भी प्राणी को इस मंजिल का आभास हो जाता है, तो उसको फिर किसी तृष्णा का विकार नहीं सताता। मैं सोचता हूं कि इस भौतिक शरीर में आत्मारूपी ब्रह्म जो है वो अनंत शक्तिमान होता है और इन आखों को बंद करने पर भी और खोलने पर भी किसी भी वस्तु विशेष के प्रति मन में विकार या लगाव नहीं आ सकता। अगर मन की वृत्ति पर हमारा नियंत्रण हो जायेगा तो इस संसार की मोह, माया, काम, क्रोध अपने आप शांत हो जायेंगे। यह कटु सत्य है। साधना के लिए जिस प्रयास एवं संयोग की आवश्यकता जरूरी है, वो स्वत: प्राप्त हो जाती है। 'जैसा खाए अन्न वैसा होवै मन'–ज्ञानियों के इस कथन की परम सत्यता को हम नकार नहीं सकते। फिर भी मैं कह सकता हूं कि आत्मा की आवाज के सुनने के बाद जीवन यात्रा का रास्ता इन सबको अपने आप गौण कर देता है। जब हमारी समझ में होनी और अनहोनी का अभास होना प्रारंभ होने लगता है, यह सब विचारों का शुद्धिकरण होने से ही संभव होता है। वरना इस मंजिल की तरफ दौड़ना संभव नहीं होता, क्योंकि पाचों इंद्रियों का एक के साथ दूसरे का लगाव है और यह सारा आंखों के द्वारा देखने से प्रतिक्रिया आरंभ होने लगती है। बिना देखे किसी शुभ एवं अशुभ विचारों की उत्पत्ति बिना काल्पनिक दृश्य के असंभव है। विचारों की उत्पत्ति के लिए आधार होना जरूरी है। बिना आधार के या दृश्य के किसी भी चीज के लिए मन में स्मृति की शुरुआत नहीं होती और उसके बाद भावों के द्वारा संवेदना की उत्पत्ति मानो ये सारा देखने मात्र पर आधारित होता है।

4. WATCH–रखवाली–रखवाली वही कर सकता है जो जागृत रहेगा और सावधानी रखते हुए जिम्मेदारी निभायेगा। इसके पीछे या आगे एक ही प्रश्न उठता है कि कोई भी प्राणी सबसे पहले स्वयं की रक्षा करे और इस एक वृत्ति के साथ सबकुछ अपने आप क्रमबद्ध योजना का निर्माण चालू हो जाता है। यही योजनाबद्ध समय-सारणी जीवन की हर उपलब्धि को साकार बना देगी। यह तभी संभव होगा जब इस भाव और अभाव, ज्ञान और अज्ञान को समझते हुए अपने को मर्यादित रखेंगे। मर्यादा यानी संयमित जीवन। संयम यानी अपने प्रति जागरूकता। बाहर से आने वाले उन सभी बुरे संस्कारों के रोक देना जिससे भीतर की शुद्धि हो सके। आज इन शब्दों की अनुप्रेक्षा करनी जरूरी है। ❑

विदेश की धरती पर जैन धर्म-दर्शन

समणी रोहितप्रज्ञा

जैन दर्शन समर्थ एवं प्रभावशाली दर्शन है। कोई भी दर्शन शक्तिशाली अथवा प्रभावशाली इसलिए नहीं बनता कि उसके अनुयायियों की संख्या अधिक है बल्कि प्रभावशाली बनने की कसौटी है कि उस दर्शन के सिद्धांतों ने जनमानस को कितना प्रभावित किया है। जैन दर्शन के अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह जैसे सर्वमान्य सिद्धांतों ने इसे सार्वभौम धर्म बनने के सामर्थ्य से युक्त बना दिया। पश्चिम की भोगवादी संस्कृति ने जहां आधुनिक मानव को अनेक प्रकार की सुख-सुविधाएं प्रदान कीं, वहीं उसे तनाव, अवसाद जैसी मानसिक बीमारियों से रुग्ण भी बना दिया। अंततः विश्व की सभी संस्कृतियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाली पाश्चात्य संस्कृति भी जैन संस्कृति के संयम, त्याग, समता, करुणा जैसे मूल्यों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी।

प्रस्तुत लेख में जैन मूल्यों एवं सिद्धांतों का पश्चिम में प्रचार-प्रसार के साथ-साथ उन पश्चिमी व्यक्तियों का भी उल्लेख करने का प्रयास है जिनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व में जैनत्व मुखर है, जिन्होंने जैन-सिद्धांतों को न केवल जीया है अपितु उसे जन-जन तक पहुंचाने का सफलतम प्रयास भी किया है अथवा कर रहे हैं। जैन धर्म को पश्चिमी देशों में ले जाने का मुख्य श्रेय जाता है–वीरचंद गांधी को जिन्होंने प्रथम बार 1893 में शिकागो में आयोजित वर्ल्ड पार्लियामेण्ट ऑफ रिलिजियंस में जैन दर्शन की प्रभावक प्रस्तुति देकर उत्तर अमेरिका तथा पूरे विश्व को जैन धर्म-दर्शन से परिचत कराया। विदेशी धरती पर जैनधर्म के नाम को ले जाने वाले विद्वानों की श्रृंखला में एक और महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है–बैरिस्टर चम्पतराय जैन जिन्होंने इंग्लैण्ड की धरा पर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये।

पश्चिमी संस्कृति को जैन दर्शन एवं संस्कृति से प्रभावित करने में बहुत बड़ा योगदान उन जैन अनुयायियों का भी है जो बीसवीं सदी के प्रारंभ में ही व्यापार, आजीविका आदि हेतु पश्चिम देशों में जा बसे। वर्तमान में करीब 2,00,000 जैन धर्मानुयायी भारत से बाहर रहते हैं एवं उनमें से अधिकतम लोगों का निवास स्थान अमेरिका तथा यूरोप है। वहां भौतिकता प्रधान संस्कृति के बीच रहते हुए भी जैन धर्मानुयायियों ने त्याग प्रधान आध्यात्मिक जैन संस्कृति को न केवल सुरक्षित रखा अपितु संवर्द्धित भी किया। जिसका परिणाम है–विदेशी धरती पर भी अनेक जैन केंद्रों एवं मंदिरों की स्थापना।

अमेरिका में प्रति दूसरे वर्ष आयोजित जैन सम्मेलन (JAINA Convention) के कार्यक्रम में हजारों की संख्या में उपस्थित जैन भाई-बहनों के साथ कुछ विदेशी लोगों की सहभागिता भी इस बात को प्रमाणित करती है कि वहां के लोग जैन दर्शन एवं संस्कृति से काफी प्रभावित है। विदेशी लोगों का शाकाहार के प्रति निरंतर बढ़ता आकर्षण भी यही सिद्ध करता है कि जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धांत अहिंसा को वहां के जनमानस ने सम्यग्‌रूपेण समझा है। सांख्यिकी के अनुसार वर्तमान में अमेरिका की करीब 7.3 मिलियन (73 लाख) जनता शाकाहारी है। वहीं अन्य 22.8 मिलियन (2 करोड़ 28 लाख) लोग ऐसे हैं जिनका कहना है कि उनका आहार शाकाहार सम (Vegetarian inclined) है और एक मिलियन (10 लाख) लोग ऐसे हैं जिनकी जीवनशैली विगेन (vegan) है। विगेन जीवनशैली का तात्पर्य है–शाकाहारी होने के साथ-साथ डेयरी-उत्पादन (Dairy Product) का भी उपयोग न करना।

किसी भी धर्म-दर्शन के प्रचार-प्रसार में उससे संबंधित साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। पाश्चात्य देशों में जैन-दर्शन के प्रभाव का एक कारण वहां के विद्वानों की जैन साहित्य के प्रति बढ़ती आस्था एवं रुचि भी है। पाश्चात्य विद्वानों की जैन धर्म से संबंधित जिज्ञासाओं को समाहित

करने हेतु भारतीय जैन विद्वानों के द्वारा अंग्रेजी भाषा में भी अनेक पुस्तकें लिखी गयीं। श्री चम्पतराय जैन द्वारा लिखित साहित्य–Key of Knowledge, Confluence of Opposites, Jain Logic, Jain Law, Jain Penance आदि पाश्चात्य जनता के समक्ष जैन दर्शन की प्रस्तुति का उत्तम माध्यम बनी। बैरिस्टर जुगमंदिरलाल जैन (1881-1927) ने Oxford में रहते हुए जैन शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया और कालांतर में तत्त्वार्थसूत्र, पंचास्तिकायसार, समयसार, जीव-कर्म काण्ड जैसे गहन ग्रंथों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। उनकी पुस्तक 'The Outline of Jainism' .... 1986 में Cambridge University, Press द्वारा प्रकाशित किया जाना तथा उनके प्रयासों से लंदन में एक जैन लाइब्रेरी की स्थापना होना भी जैन धर्म की महत्ता को उजागर करता है। जै.एल. जैन का ही अनुसरण करते हुए डॉ. हीरालाल जैन ने भी अनेक ग्रंथों का संपादन एवं अनुवाद किया तथा विविध विश्वविद्यालयों में जैन सिद्धांतों पर वक्तव्य दिये। इसी श्रृंखला में विदेशी धरा पर जैन धर्म-दर्शन के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वालों में एक है– प्रो. पद्मनाभ जैनी जिनकी पुस्तक 'The Jain Path of Purification' को विश्वविद्यालयों में जैन-दर्शन के अध्ययन हेतु उत्तम माना जाता है। आज भी पाश्चात्य देशों में प्रवासित अनेक जैन विद्वान साहित्य तथा अन्य माध्यमों से जैन धर्म-दर्शन की प्रभावना में संलग्न हैं।

अमेरिका प्रवासी प्रवीण के. शाह (Director of Jain Study Center of North Carolina) द्वारा जैन पाठशाला में अध्यापन हेतु रचित पुस्तकों की ग्रन्थमाला जैन धर्म-दर्शन को आदि से अंत तक समझाने में सहयोगी है। वही उनके युगानुरूप चिंतन का परिणाम है e-library का निर्माण जो इंटरनेट के माध्यम से जैन साहित्य को जन-जन तक पहुंचाने का श्रेष्ठ साधन है। लंदन में स्थित IOJ (Institute of Jainology) द्वारा जैन पाण्डुलिपियों के Digitization के महत्त्वपूर्ण कार्य को किया जाना भी जैन धर्म की प्रभावना का अनुपम उपक्रम है।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी समृद्ध जैन साहित्य का अध्ययन कर उसे आधुनिक स्वरूप में प्रस्तुत करके अद्भुत योगदान दिया है। जर्मनी के विद्वान हर्मन जेकोबी (1850-1937) ने चार आगम-ग्रंथों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया जो 'Sacred Books of East' के नाम से विख्यात है। उनकी इस कृति ने अन्य अनेक विद्वानों जैसे Prof. Walther Schubring, Prof. Alsdorf Joseph, Norman Brown आदि के भीतर भी जैन साहित्य एवं दर्शन को पढ़ने की जिज्ञासा पैदा की। Prof. Maurice Bllomfield, William Brown, Heinrich Zimmer and Joseph Campbell, A. Guerinot आदि विद्वानों का भी जैन साहित्य को महत्त्वपूर्ण योगदान है। Mrs. Sinclair Stevenson द्वारा लिखित 'The Heart of Jainism', एवं R. Williams द्वारा लिखित 'Jain Yoga' ब्रिटिश विद्वानों के वैदुष्यपूर्ण प्रकाशन है। 1914 के बाद तो जैन धर्म से संबंधित साहित्य फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन और उत्तर अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों में उपलब्ध होने लगा।

Albert Schweitzer (1875-1965) द्वारा 'Reverence for Life' सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। कुछ विद्वानों का मत है कि Schweitzer द्वारा इस सिद्धांत का प्रतिपादन होना उन पर भारतीय संस्कृति और विशेषत: जैनधर्म की अहिंसक संस्कृति के प्रभाव का ही परिणाम है। Albert Schweitzer अपनी पुस्तक में लिखते हैं–"True Philosophy must start from the most immediate and comprehensive fact of consciousness and this may be formulated as follows : I am life which wills to live and I exist in the midst of life which wills to live".

Schweitzer के उपर्युक्त विचारों से प्रतीत होता है कि उनके जीवन में जैनत्व मुखर था। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के प्रति पश्चिमी जनता का आदर यही प्रमाणित करता है कि पाश्चात्य लोगों की भी अहिंसा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इतना ही नहीं वे उसे जीवन में धारण करने के लिए भी प्रेरित हुए हैं।

वर्तमान में भी ऐसे अनेक विदेशी हैं जो जैनदर्शन के विस्तार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इटली की प्रसिद्ध गायिका Claudia Pastorino ने जैन दर्शन से संबंधित अनेक पुस्तकों का इटालियन भाषा में अनुवाद किया है जिनमें से एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है–समण सुत्तं। वर्तमान में वे पशु-अधिकार एवं शाकाहार पर कार्य कर रही है। जर्मनी के Patrick Krueger, Centre of Jain Studies–Freie University (Berlin) के संस्थापक तथा विभागाध्यक्ष हैं। वे शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से जैन धर्म-दर्शन के विस्तार के साथ-साथ सामान्य जनता के मध्य भी अहिंसा तथा जैन धर्म के सिद्धांतों को फैलाने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं। जर्मनी के Peter Flugel लंदन में स्थित School of Oriental and African Studies (SOAS) नामक विश्वविद्यालय में Department of the Study

of Religion के विभागाध्यक्ष हैं और जैनदर्शन के अध्यापन का कार्य करते हैं। History of Jainism उनकी महत्वपूर्ण कृति है। Peter Flugel द्वारा प्रतिवर्ष जैनधर्म-दर्शन से संबंधित विषयों पर आयोजित कॉन्फ्रेन्स भी पाश्चात्य विद्वज्जनों के लिए जैन-दर्शन को गहराई से समझने का महत्त्वपूर्ण उपक्रम है।

French Jain कहलाने वाले Pierre Amiel फ्रांस के निवृत्त Public Administrator है जिन्होंने 1998 में Lord Mahavira : A Study in Historical Perspective का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया है। केनेडा के Dr. Robert Zydenbos नामक प्रसिद्ध विद्वान ने Moksha in Jainism, Jainism : Today and its Future आदि अनेक पुस्तकों को पश्चिमी जनता के सामने प्रस्तुत किया है।

फिल्म निर्माता, लेखक एवं पर्यावरण शास्त्री Dr. Michael Tobias ने 'अहिंसा' पर एक ऐसी फिल्म बनायी है जो अमेरिकन जनता के लिए प्रेरक है। विदेशी धरती पर ऐसे व्यक्तित्व भी हुए हैं जिन्होंने जैन श्रावक जैसा जीवन व्यतीत किया। हर्बट वोरन इंग्लैंड के वे व्यक्ति हैं जिनकी 12 व्रतों के प्रति गहरी आस्था थी और जिन्होंने पूर्ण श्रद्धा के साथ इन व्रतों का पालन किया। वर्तमान में भी ऐसे अनेक विदेशी हैं जो जैन-जीवनशैली को अपनाते हुए जैनधर्म के प्रचार में अपना समय एवं श्रम लगा रहे हैं। जर्मनी के Christian Carla एक ऐसा युगल है जो स्वयं का परिचय आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रदत्त नाम अपरिग्रह एवं करुणा से ही देते हैं। उनका जीवन जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित है और उन्होंने युगानुसार इसका माध्यम बनाया है इंटरनेट को जिससे आज की युवा पीढ़ी जैन सिद्धांतों को आसानी से जान सके। जर्मनी की Gabriel(गेब्रीयल) एक ऐसी महिला है जो जैन-धर्मानुयायियों के लिए भी आदर्श है। वे हिंसा के दोष से बचने हेतु घास पर नहीं चलती। इतना ही नहीं स्थानांतरण के लिए हवाई जहाज, ट्रेन अथवा कार का उपयोग न कर साइकिल का उपयोग करती है। चाहे लंबा रास्ता ही तय क्यों न करना पड़े, वे पानी के ऊपर बने पुल का उपयोग नहीं करती, क्योंकि उनका मानना है कि पुल पर से जाने से पानी के जीवों में भय पैदा होता है।

जैनधर्म को विश्व के कोने-कोने तक पहुंचाने के लिए बीसवीं शताब्दी में भारत प्रवासी अनेक जैन विद्वानों ने पश्चिमी देशों की यात्रा प्रारंभ की। आचार्य सुशील कुमारजी, आचार्य चन्दनाजी, चित्रभानुजी आदि व्यक्तित्वों ने न केवल विदेशी धरा पर रहने वाले जैन समाज को धार्मिक लाभ प्रदान किया अपितु धीरे-धीरे पाश्चात्य जनता भी उनके संपर्क में आई तथा जैनधर्म को जानने, समझने एवं जीने के लिए प्रेरित हुई। इसी शताब्दी में भारत भूमि पर एक क्रांतिकारी संत हुए—आचार्य तुलसी। उन्होंने जैनधर्म की संयम-प्रधान संस्कृति तथा सार्वभौमिक सिद्धांतों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए 1980 में एक श्रेणी का निर्माण किया जो समण श्रेणी के नाम से पहचानी जाने लगी। समण श्रेणी के सदस्यों की विदेश यात्रा ने पश्चिम में बसने वाले जैन समुदाय के साथ-साथ पश्चिमी लोगों को भी वर्तमान समय में जैन दर्शन की प्रासंगिकता से परिचित कराया। वर्तमान में अमेरिका के न्यूजर्सी, ऑरलेण्डो, ह्यूस्टन क्षेत्र में जैन विश्व भारती के नाम से कार्यरत संस्थाओं में समणीजी के निर्देशन में अनेक गतिविधियां नियमित रूप से चल रही हैं। समणीजी का विदेशी धरा पर नित्य प्रवास होने से अन्य धर्म-संस्थाओं के साथ भी उनका अच्छा संपर्क है। परिणाम-स्वरूप पाश्चात्य जनता के मध्य भी समण श्रेणी के माध्यम से जैन सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार हेतु विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। समणीजी के सार्थक परिश्रम से 2010 में मायामी के प्रसिद्ध लोरिड़ा इंटरनेशनल विश्वविद्यालय में जैन दर्शन एवं अहिंसा तथा ध्यान संबंधित पाठ्यक्रमों का अध्यापन प्रारंभ हुआ जो वर्तमान में प्रगतिशील है। इस उपलब्धि को विदेश की धरती पर जैनधर्म की प्रभावना हेतु उल्लेखनीय कार्य माना जा सकता है। अन्य अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में भारतीय एवं पाश्चात्य जैन विद्वानों द्वारा जैन दर्शन का अध्यापन तथा जैन सिद्धांतों पर शोध होना वहां पर जैन दर्शन के विस्तार एवं प्रभाव का महत्त्वपूर्ण माध्यम बन रहा है।

निष्कर्षत: पश्चिमी संस्कृति भौतिकता की दौड़ में जितनी आगे बढ़ी, समस्याएं भी उतनी ही बढ़ती चली गईं। आज पश्चिमी विचारकों द्वारा भी समाधान भोग व हिंसा में नहीं त्याग अथवा संयम और अहिंसा अथवा करुणा में ही खोजा जा रहा है। विदेश की धरती पर न केवल जैनधर्म के जिज्ञासुओं की संख्या में वृद्धि हो रही है अपितु वहां के लोग जैन जीवनशैली को अपनाने के लिए भी प्रेरित हो रहे हैं। जिन पश्चिमी विद्वानों ने जैन दर्शन के मूल को समझ लिया है और जैन सिद्धांतों को जी रहे हैं, उनके द्वारा शोधपरक साहित्य सामग्री प्रस्तुत की जा रही है, जो भविष्य में पश्चिमी लोगों का जैन दर्शन व संस्कृति के प्रति और अधिक आकर्षण बढ़ाने में सहयोगी बन सकेगी। ❑

आचार्य तुलसी जन्मशताब्दी के चतुर्थ चरण पर

मंगल उद्बोधन आचार्य महाश्रमण का

आर्हत वाङ्मय में कहा गया है–पक्कमंति महेसिणो–जो महर्षि होते हैं, वे पराक्रम करते हैं। उनका पराक्रम स्वकल्याण के लिए होता है और परकल्याण के लिए भी होता है। आज से सौ वर्ष पूर्व ऐसे ही स्व एवं पर कल्याण के लिए समर्पित होने वाले महामानव का शिशुरूप में जन्म हुआ था। राजस्थान के नागौर जिले की लाडनूं की धरा को उस शिशु की जन्मभूमि कहलाने का गौरव और लाडनूं के खटेड़ परिवार के भवन को उस शिशु की जन्मस्थली बनने का महत्त्व प्राप्त है। इस अवसर पर मैं स्मरण करता हूं मातुश्री बृदनाजी और पिता श्री झूमरमलजी खटेड़ को, जिनको उस शिशु के माता-पिता बनने का गौरव प्राप्त हुआ था।

आचार्य तुलसी बीसवीं सदी में इस धरती पर आए थे। बीसवीं सदी में ही उन्होंने लगभग तिरासी वर्ष का जीवन जिया, धर्म और अध्यात्म की साधना के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य किया, साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र में भी उनका कर्तृत्व निखरा और प्रखर संन्यासी के रूप में बीसवीं सदी में ही उन्होंने अंतिम सांस ली। उन्होंने अपने जीवन में कुछ ऐसे कार्य किए, उनका कुछ ऐसा कर्तृत्व उभरा, जिससे वे प्रसिद्धि को प्राप्त हो गए। उनका विरोध भी बहुत हुआ। उनके जो अंतर्बाह्य विरोध हुए, उन्हें याद करने पर मानो सिहरन-सी होती है। लेकिन विरोधों से नहीं घबराना, विघ्न-बाधाओं से नहीं डरना महापुरुषत्व का लक्षण होता है। दुनिया में ऐसे आदमी मिल सकते हैं, जो विघ्न-बाधाओं के भय से कोई बड़ा काम शुरू ही नहीं करते। ऐसे आदमी भी मिल सकते हैं जो कार्यारंभ तो कर देते हैं, किंतु विघ्न-बाधाओं के आने पर घुटने टेक देते हैं, कार्य को बीच में छोड़ देते हैं और ऐसे मनुष्य भी दुनिया में मिल सकते हैं, जो विघ्न-बाधाओं के आने पर भी प्रारंभ किए गए कार्य को बीच में नहीं छोड़ते, उसे अंजाम (परिणति) तक पहुंचाने का प्रयास करते हैं।

आचार्य तुलसी एक ऐसे महामानव थे, जो विघ्न-बाधाओं से घबराए बिना आगे बढ़ने का प्रयास करते थे। जितना मैंने उनको समझा, उससे यह लगभग मेरी धारणा बनी है कि अनेक विघ्न-बाधाओं के आने पर भी वे अविचल रहे। उनमें त्याग का बल था। संत में तो वैसे ही त्याग की शक्ति होती है अथवा होनी चाहिए, फिर वे तो संत ही नहीं, संतों के भी स्वामी पुरुष थे। तेरापंथ जैसे महान धर्मसंघ के अधिनेता थे, अधिशास्ता, अनुशास्ता थे, आचार्य थे। आचार्य का पद प्राप्त होने पर भी उन्होंने उसका त्याग किया था। सामान्यतया अपने जीवनकाल में आचार्य पद नहीं छोड़ा जाता, परंतु उन्होंने लीक से हटकर कुछ ऐसा कार्य किया, आचार्य पद को अपने जीवनकाल में छोड़ दिया और स्वेच्छा से आचार्य पद से मुक्त हो गए। विसर्जन का ऐसा उदाहरण कोई विरल पुरुष ही प्रस्तुत कर सकता है।

जनोत्थान के लिए उन्होंने कितना कार्य किया! अणुव्रत आंदोलन प्रारंभ किया। उसके माध्यम से उन्होंने मानव जाति की कितनी सेवा की! जैनागमों का संपादन कार्य प्रारंभ किया और इसके द्वारा जैन शासन की, जैन वाङ्मय की सेवा की।

उन्होंने लंबी-लंबी पदयात्राएं कीं। कहां राजस्थान, कहां कोलकाता। राजस्थान से कोलकाता और

कोलकाता से राजस्थान तक की उन्होंने पदयात्रा की। उन्होंने राजस्थान से कन्याकुमारी तक की पदयात्रा की। कन्याकुमारी से चले और वापस राजस्थान की पदयात्रा की। आज तक के तेरापंथ के इतिहास में आचार्य तुलसी के अतिरिक्त किसी भी आचार्य ने आचार्य रूप में न कोलकाता की यात्रा की है, न दक्षिण भारत की यात्रा की है। अब तक केवल आचार्य तुलसी ही एकमात्र ऐसे आचार्य हुए, जिन्होंने पूर्व और दक्षिण भारत की यात्रा की। केवल यात्रा ही नहीं, यात्रा के साथ-साथ जनोत्थान का कार्य भी किया।

आचार्य तुलसी ने राजनीति के लोगों से भी संपर्क साधा। वे देश के शीर्षस्थ नेताओं से मिले तो गांव की साधारण जनता से भी उनका संपर्क होता था। अभी हमने एक ऐसे महापुरुष की जन्मशताब्दी मनाई जिसे 'कीर्तिमान पुरुष' कहा जा सकता है। उनके द्वारा बनाए गए कीर्तिमानों की एक लंबी सूची है।

बाईस वर्ष की छोटी अवस्था में तेरापंथ के युवाचार्य और आचार्य बनने वाले वे आज तक के तेरापंथ के इतिहास में एकमात्र आचार्य हुए और भी अनेक क्षेत्रों में उन्होंने कीर्तिमान स्थापित किए। वे भारत के मानो देदीप्यमान ऋषि-नक्षत्र थे। भारत कृषिभूमि भी है और साथ-साथ ऋषिभूमि होने का भी गौरव इसे प्राप्त है। अतीत में कितने-कितने संत भारत में हुए हैं और वर्तमान में भी कितने-कितने संत भारत में अपनी साधना कर रहे हैं, अपने ढंग से कार्य कर रहे हैं। आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन किया। अणुव्रत का आकाश खुला है। कोई भी व्यक्ति अणुव्रत के आकाश में प्रवेश पा सकता है, अणुव्रत के छत्र के नीचे आ सकता है, भले ही वह किसी भी जाति का हो, किसी भी धर्म-संप्रदाय का अनुयायी हो और किसी भी गुरु के प्रति आस्थावान हो। अगर चरित्र में उसकी निष्ठा है तो वह अणुव्रत को स्वीकार कर सकता है। मैं तो यहां तक कहता हूं कि कोई नास्तिक आदमी भी अणुव्रती बनकर अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। आचार्य तुलसी के जीवन में उच्चता थी। उनके भावों और विचारों में गहराई थी। संस्कृत में कहा गया है–

उच्चत्वमपरानाद्रौ, नेदंसिंधावगाधता।
अलंघनीयताहेतोर्द्वयमेतन् न नान्विनि।।

पहाड़ में ऊंचाई होती है, परंतु गहराई नहीं होती। समुद्र में गहराई होती है, ऊंचाई नहीं होती, पर कुछ मनस्वी पुरुष दुनिया में ऐसे होते हैं, जिनमें ज्ञान की, विचार की गहराई होती है तो आचार की ऊंचाई भी होती है। मुझे लगता है आचार्य तुलसी ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे, जिनमें चिंतन का गांभीर्य था तो आचार का उच्चत्व भी था। सौभाग्य से मुझे उनकी निकटता में रहने का अवसर मिला था। वैसे तो साध्वीप्रमुखाजी जो यहां विराजमान हैं, उन्हें भी यह अवसर प्राप्त हुआ था, मुझसे पहले प्राप्त हुआ था और लंबे समय तक प्राप्त हुआ था। आपको आचार्य तुलसी की एक महान कृति कहा जा सकता है। उन्होंने ही आपको दीक्षित किया, उन्हीं से साध्वीप्रमुखा, महाश्रमणी और संघमहानिदेशिका का स्थान प्राप्त हुआ और उनके साये में ही दीर्घकाल तक अध्ययन और साधना का अवसर मिला।

आचार्य तुलसी को अगर जानना हो तो उसके कई माध्यम हो सकते हैं, पर साध्वीप्रमुखाजी एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनसे आचार्य तुलसी के बारे में प्रामाणिकता से जाना जा सकता है, क्योंकि उन्होंने साक्षात् देखा ही नहीं, उनकी पावन छत्रछाया में विशाल लेखन कार्य भी किया है। आचार्य तुलसी की आत्मकथा 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' साध्वीप्रमुखाजी के द्वारा संपादित है। यों कह सकते हैं कि आचार्य तुलसी की आत्मकथा को उन्होंने भाषा का परिधान दिया है। वह आत्मकथा आचार्य तुलसी को जानने का एक सक्षम माध्यम है। उस ग्रंथावली या उस आत्मकथा को सामने लाने में साध्वीप्रमुखाजी का बड़ा योगदान रहा है।

हमारे श्रद्धेय मंत्री मुनिश्री भी यहां विराजमान हैं, जो बाल्यावस्था में आचार्य तुलसी के सामीप्य में आए थे और लंबे काल तक आचार्य तुलसी की अनुशासना में रहे हुए हैं। जैसा कि मैंने कहा–मुझे भी आचार्य तुलसी

के नैकट्य में रहने का मौका मिला था। यों तो और भी लोगों को मिला होगा, लेकिन जिन कइयों को निकटता में रहने का मौका मिला, उनमें एक नाम मेरा भी प्रस्तुत किया जा सकता है, क्योंकि मुझे क्षेत्रीय दृष्टि से भी और कार्य की दृष्टि से भी उनके निकट रहने का अवसर मिला था। मुझे उनकी अंतरंग परिषद का सदस्य बनने का भी सौभाग्य मिला था। कितना उनका वात्सल्य मुझे प्राप्त हुआ! उन्होंने मेरा पथदर्शन किया, आगे बढ़ाया और संघ के सामने एक छोटे से साधु को 'महाश्रमण' के रूप में खड़ा कर दिया। एक मेरा ही नहीं, कितने-कितने व्यक्तित्वों का निर्माण उन्होंने किया। उनमें से एक नाम अग्रिम पंक्तियों में मेरा भी रखा जा सकता है, जिन पर उनका महान उपकार है।

एक प्रसंग का मुझे स्मरण हो रहा है। एक बार गुरुदेव तुलसी ने किसी प्रसंग में मुझसे कहा–'तुम मुझसे कुछ मांगो।' मैंने कहा–'गुरुदेव! अभी नहीं, कुछ सोचकर मांगूंगा।' समय आने पर मैंने गुरुदेव से तीन वरदान मांगे।

मेरी स्मृति के अनुसार वे तीन वरदान थे–

1. काम और क्रोध को जीतने की मेरी साधना प्रवर्धमान हो।
2. जैन धर्म और तेरापंथ दर्शन का अध्ययन कर जैनशासन और तेरापंथ शासन की मैं सेवा कर सकूं।
3. मेरा स्वास्थ्य प्राय: प्राय: ठीक रहे।

गुरुदेव ने उस समय फरमाया था–'ठीक है, तुम इन बातों को याद रखना।' इस तरह कितनों-कितनों को उन्होंने पथदर्शन दिया, आगे बढ़ाने का प्रयास किया। जन्मशताब्दी वर्ष के अंतिम चरण का सप्तदिवसीय कार्यक्रम आज संपन्न हो रहा है। वैसे तो आज द्वितीया है, कल के सूर्योदय के साथ शताब्दी वर्ष की संपन्नता मान ली जानी चाहिए।

इस वर्ष में कितने-कितने कार्यक्रम हुए हैं। मैंने मुख्यत: दो कार्यक्रम बताए थे। एक–महाव्रतों का और दूसरा अणुव्रत के प्रचार-प्रसार का कार्यक्रम। महाव्रतों के कार्यक्रम में हमने सौ मुनि दीक्षाओं का प्रकल्प प्रस्तुत किया था और अणुव्रत के प्रचार-प्रसार की आशंसा की थी। हमारे दोनों कार्य आगे बढ़े और अच्छी तरह संपन्न हुए।

कल गुरुदेव तुलसी के वाङ्मय के विमोचन का कार्यक्रम था। वह भी एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम था। जन्मशताब्दी वर्ष में गुरुदेव तुलसी के साहित्य का एक साथ पुनः संपादन और प्रकाशन एक बड़ा कार्य था। यह दायित्व साध्वीप्रमुखाजी को मिला था, लेकिन दायित्व लेने के साथ आपने मुझसे यह अनापत्ति मांगी थी कि संपादक के रूप में मेरा (साध्वीप्रमुखा का) नाम न आए। यह भी एक त्याग है। कोई इतना गुरुतर और बड़ा कार्य करे और उसके साथ अपना नाम न जोड़ने की भावना भी रखे तो इसे मैं उसका एक त्याग मानता हूं। ऐसे त्याग से सबको प्रेरणा मिलनी चाहिए कि हमारे मन में कार्य के साथ नाम, यश, ख्याति की लालसा नहीं रहनी चाहिए। कोई कार्य करे तो उस कार्य के साथ उसका नाम आए, इसे मैं गलत नहीं मानता। लेकिन कार्य करने पर भी आदमी उसके साथ अपने नाम, यश, ख्याति की भावना को भी त्यागने का प्रयास करे, यह प्रशस्य बात है।

जन्मशताब्दी वर्ष के साथ अनेकानेक उपक्रम जुड़े, वह भी शताब्दी वर्ष का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम कहा जा सकता है। अणुव्रत के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उसका बड़ा महत्त्व है। 'आचार्य तुलसी स्मृति ग्रंथ' जिसका कल लोकार्पण होना है, वह भी शताब्दी वर्ष की एक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है। सुप्रसिद्ध गायकों द्वारा प्रस्तुत गीत-संगीत की सी.डी. तथा आचार्य तुलसी एनिमेशन फिल्म का लोकार्पण हुआ था, और भी अनेक ऐसे कार्यक्रम हुए, जिनकी सूची शायद प्रस्तुत न की जा सके, लेकिन जितने भी कार्य हुए, उनमें कितनों का श्रम लगा, कितनों का योगदान रहा, तब कहीं यह विराट कार्यक्रम गरिमापूर्ण ढंग से संपन्न हो सका। समीक्षा का अवकाश तो हर चीज में होता है। अच्छाइयां सामने

आनी चाहिए तो जो कुछ कमियां रही हों, वे भी सामने आनी चाहिए। तटस्थ समीक्षा का अपना महत्त्व होता है।

मैं श्रद्धा के साथ इस अवसर पर परमपूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी का स्मरण करता हूं, जिनकी विद्यमानता में, जिनके द्वारा आचार्य तुलसी जन्मशताब्दी वर्ष की परिकल्पना की गई थी, निर्णय किया गया था, उनके सान्निध्य में गुरुदेव तुलसी की जन्मशताब्दी मनाने का सौभाग्य तो हमें नहीं मिला और सबसे बड़ा सौभाग्य तो यह होता कि गुरुदेव तुलसी की विद्यमानता में, उनके पावन सान्निध्य में हम उनकी जन्मशताब्दी मनाते। ये दोनों सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं हुए, फिर भी हम सबने मिलकर प्रयास किया है। अब शताब्दी वर्ष का कार्यक्रम संपन्न हो रहा है। इसके चार चरणों में पहला चरण लाडनूं में, दूसरा चरण गंगाशहर में और तीसरा चरण और चौथा चरण दिल्ली में मनाया गया।

एक महाचरण हमने सर्वाधिक दीक्षा के रूप में बीदासर में मनाया था, जिसे मैंने चरण नहीं, महाचरण कहा था। इस प्रकार अनेक उपलब्धियों के साथ आचार्य तुलसी का यह जन्मशताब्दी वर्ष संपन्नता की ओर है।

गुरुदेव तुलसी की जन्मशताब्दी तो अब संपन्न हो रही है और आचार्य महाप्रज्ञजी की जन्मशताब्दी निकट आ रही है। आज मैं इस पुनीत अवसर पर अपनी ओर से कहना चाहता हूं कि हमें पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी की जन्मशताब्दी को भी मनाना है। मैंने कह दिया तो अभी से मान लें कि वह शताब्दी का कालमान चिंतन का, निर्णय का कालमान शुरू हो गया है और हमें इस पर ध्यान देना है कि हम कैसे अच्छे तरीके से उसे मनाएं। एक वर्ष का हमने अनुभव भी ले लिया। इस अनुभव का उपयोग हमें आचार्य महाप्रज्ञ की जन्मशताब्दी के आयोजन में करना है।

आचार्य महाप्रज्ञजी, जो हमारे महान उपकारी हैं, तेरापंथ के दशम अधिशास्ता के रूप में जिन्होंने मुझे दायित्व सौंपा था, हमें उनकी जन्मशताब्दी को बहुत अच्छे ढंग से मनाना है। उस समय हम कहां रहेंगे, यह तो निश्चय करना अभी कठिन है, किंतु इतना जरूर कह सकते हैं कि हम जहां भी रहेंगे, मुख्य कार्यक्रम तो वहीं हो सकेगा, लेकिन आचार्य महाप्रज्ञ जन्मशताब्दी मनाई जाए व्यापक स्तर पर।

आचार्य महाप्रज्ञजी की इस जन्मशताब्दी वर्ष का कालमान होगा वि.सं. 2076 की आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी से वि.सं. 2077 की आसाढ़ कृष्णा त्रयोदशी तक। किस रूप में हम उसे मनाएंगे, हमें इस पर चिंतन-मनन करना है। समय पर शताब्दी वर्ष के कार्यक्रमों का निर्धारण हो सकेगा।

आचार्य तुलसी जन्मशताब्दी समारोह समिति, जो जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा से जुड़ी हुई है, पर इस आयोजन का दायित्व था। यह बात गुरुदेव महाप्रज्ञ द्वारा ही निर्णीत थी कि जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा इसकी मुख्य आयोजक संस्था होगी। आचार्य तुलसी जन्मशताब्दी समारोह समिति का योग मिला तो महासभा को भी सुंदर मौका मिल गया। महासभा ने बड़ा अच्छा दायित्व निभाया है, बहुत श्रम किया है। इतना श्रम न होता तो संभवतः इतना काम होना भी कठिन होता। अब आचार्य महाप्रज्ञजी की जन्मशताब्दी किस रूप में, किसके द्वारा, किसके मुख्य आयोजकत्व में हो, इन बातों पर हम बाद में विचार कर सकेंगे, पर इतना हमने तय कर लिया है कि हमें शताब्दी मनानी है।

परमपूज्य गुरुदेव तुलसी के प्रति मैं अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं कि ऐसे महान आचार्य हमें मिले, जिन्होंने मानव कल्याण के लिए कितना श्रम किया। उनका अप्रत्यक्ष साया हमें मिलता रहे, यह हमारी अभीप्सा है। ❑

(साभार विज्ञप्ति-अंक न 31, 2-8 नवम्बर, 2014)

विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

VAB VENTURES

Leadership with Trust...

VAB Ventures Ltd.

60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in

Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

जैन भारती, दिसम्बर, 2014 ■ प्रेषण दिनांक 28 नवम्बर, 2014
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।